अध्याय एक

स्वातंत्र्योत्तर कहानी और अमरकांत

अध्याय एक
स्वातंत्र्योत्तर कहानी और अमरकांत

कहानी हमेशा लोगों की रुचि का केन्द्र रही है। सामाजिक गतिविधियों को दिलचस्प ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता उसमें निहित है। हिन्दी कहानी प्रारंभ से लेकर अपने विकास के कई मंज़िलों को पार करते हुए समकालीन समय में पहूँच गयी है और अब भी उसका सफर ज़ारी है। प्रत्येक मंज़िलों को पार करते वक्त देश के वातावरण में आए परिवर्तनों ने कहानी की आबोहवा को भी बदल डाला। स्वतंत्रता के बाद हिन्दी कहानी ने विभिन्न आंदोलनों से जूझकर अपनी विकासयात्रा ज़ारी रखी। ये आंदोलन कहानी के विकास के ऐसे सोपान थे, जिसको पल्लवित करने में अनेक महान हस्तियाँ समय-समय पर अपना सहयोग देते रहे। उनमें कुछ तो पतझड़ के समान थे जो कुछ देर तक इसके साथ रहे, फिर साहित्यिक के क्षेत्र से ओझल हो गए। कुछ तो ऐसे थे जिन्होंने सृजन को अपना सामाजिक दायित्व समझा और आद्यंत इसका साथ देते रहे। ऐसे महारथियों में अमरकांत का नाम सर्वोपरी महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत अध्याय में स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में अमरकांत की भूमिका को रेखांकित करने की कोशिश की गई है।

1.1 स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी कहानी : संक्षिप्त परिचय

कथाओं के लिए भारतवर्ष की परंपरा अत्यंत सम्पन्न मानी जाती है। कादम्बरी, दशकुमार चरित, हितोपदेश, पंचतंत्र, बृहत कथा-मंजरी और पुराण कथाएँ इस देश के सम्पन्न कथा साहित्य का संकेत करती है। खडीबोली हिन्दी साहित्य के प्रणयन के आरंभिक चरण में पुरानी कथाशैली के अनेक उदाहरण मिलते हैं। ललूलाल कृत 'प्रेमसागर', सदलमिश्र कृत नासिकेतोपाख्यान, सैयद इंशा अल्लाखां की 'रानी केतकी की कहानी' तथा भारतेन्दु युग में 'कविवचनसुधा', 'हरिश्चंद्र मैगज़िन', 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका', 'हिन्दी प्रदीप' तथा 'ब्राह्मण' आदि में प्रकाशित कहानियाँ हिन्दी की कहानियाँ समझी जाती हैं।

बीसवीं सदी के आरंभ में जब हिन्दी कहानी अस्तित्व में आयी थी, तो उसकी कोई सुनिश्चित पहचान नहीं बनी थी। यहाँ तक कि इसके लिए कोई संज्ञा तक सुनिश्चित नहीं थी। 'सरस्वती' में इसके लिए 'आख्यायिका' पद का प्रयोग आरंभ हुआ। जिसे 'सुदर्शन', 'वैश्योपकारक', 'इंदु' और कुछ दूसरी पत्रिकाओं ने भी अपनाया पर 'मर्यादा' में बंगला साहित्य के अनुकरण पर इसके लिए 'गल्प' पद प्रयुक्त हो रहा था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसके लिए 'छोटी कहानी' शब्द को उचित समझा।

हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी के संबन्ध में विद्वानों में मतभेद है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने किशोरीलाल गोस्वामी रचित 'इंदुमति' (1900) को हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी माना है। अन्य विद्वानों के विचार में इंशा अल्लाखां

की 'रानी केतकी की कहानी' (1810), माधवप्रसाद सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' (1901), आचार्य रामचंद्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' (1903), बंगमहिला की 'दुलाईवाली' (1907), जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम', चद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' (1915) कहानियों के नाम स्वीकृत किये जाते हैं। प्रकाशन की दृष्टि से किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमती' को हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी माना जाता है।

प्रेमचंद और प्रसाद का आगमन हिन्दी कहानी साहित्य के क्षेत्र में मील का पत्थर था। प्रेमचंद की कहानियाँ 'मानसरोवर' (आठ भाग) और 'गुप्तधन' में संकलित है। उनकी कहानियाँ आदर्शोन्मुख यथार्थवाद पर आधारित है। प्रसाद की आदर्शवादिता, काल्पनिकता तथा प्रभावात्मकता की अपेक्षा प्रेमचंद के आदर्शोन्मुख यथार्थवाद ने उस युग पर अधिक प्रभाव डाला। डॉ. गोपाल राय के शब्दों में - "प्रेमचंद उन नैतिक मूल्यों के समर्थक थे, जिन्हें वे समाज और देशहित में उपयोगी मानते थे।"[1] प्रसाद की कहानियों का मूल स्वर प्रेम और सौंदर्य है। 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आँधी', 'इंद्रजाल' आदि कहानी संग्रह प्रसाद की तूलिका की देन है। प्रेमचंद और प्रसाद की कहानियों ने हिन्दी कहानी के क्षेत्र में दो परंपराओं को जन्म दिया। समाज की ओर उन्मुख प्रेमचंद की यथार्थवादी परंपरा और दूसरी वैयक्तिक अनुभूतियों को प्रमुखता देनेवाली प्रसाद की परंपरा जिसमें काल्पनिकता का समावेश है।

---

1. डॉ. गोपाल राय, हिन्दी कहानी का इतिहास, भाग 1, पृ. 90

प्रेमचंद संस्थान के कहानीकारों में विश्वंभरनाथ जिज्जा, जी.पी श्रीवास्तव, राजा राधिकारमण सिंह, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, पंडित ज्वालादत्त शर्मा, गोविन्दवल्लभ पंत, सुदर्शन, वृन्दावनलाल वर्मा एवं भगवतीप्रसाद वाजपेयी और अमरकांत का नाम उल्लेखनीय है। प्रसाद संस्थान के कहानीकारों में चतुरसेन शास्त्री, रायकृष्णदास, पाण्डेय बेचनशर्मा उग्र, वाचस्पति पाठक, विनोदशंकर व्यास एवं चंडीप्रसाद हृदयेश के नाम उल्लेखनीय है।

हिन्दी कहानी के विकास में अगस्त 1918 में काशी की कौशल्या देवी द्वारा शुरू की गई 'हिन्दी गल्पमाला' का महत्वपूर्ण योगदान है। जैनेन्द्र, इलाचंद्र जोशी और अज्ञेय की मनोविश्लेषणवादी धारा की भी अपनी अहम भूमिका है।

प्रेमचंदोत्तर एवं स्वतंत्रता पूर्व का युग हिन्दी कहानी में संक्रान्ति युग के नाम से जाना जाता है। संक्रान्तियुग में नवीन प्रवृत्तियों ने जीवन-दर्शन और व्यक्ति विश्लेषण में सर्वथा नूतन अध्याय उपस्थित किया तथा इनमें कहानी कला में अपूर्व विस्तार एवं परिवर्तन हुआ और विविध प्रयोग के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ। संक्रान्तियुगीन कहानी सभी प्रकार के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक युगबोधों के बीच गुज़रती मानसिकता का परिणाम है। इस युग के कहानीकारों पर दो विश्वयुद्धों के संक्रमण, मार्क्सवाद, गाँधीवाद, मनोविश्लेषणवाद, पूँजीवाद, औपनिवेशिक स्वतंत्रता, अरविन्द दर्शन, मानवतावाद, औद्योगिक क्रान्ति, शिक्षा, विज्ञान, अर्थनीति आदि का प्रभाव पडा है, जिससे उसके चिंतन की दिशा को नया मोड़ मिला है। इस युग के सभी कहानीकारों का स्वातंत्र्योत्तर कहानी में महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि

संक्रांतिकाल के कहानीकारों ने मुक्तिसंघर्ष के आघातों, समस्याओं और विषमताओं को देखा है और भोगा भी है। वस्तुतः संक्रान्तियुगीन कहानी से ही स्वातंत्र्योत्तर कहानी का जन्म हुआ।

1.2 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी

स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों में स्वतंत्रता पूर्व परिस्थितियों से पर्याप्त बदलाव आया है। डॉ. मधुरेश के अनुसार "देश की स्वाधीनता एक ऐसी विभाजक रेखा है जो समाज और साहित्य को देखने का दृष्टिकोण बदल देती है।"[1] स्वाधीन भारत की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का विश्लेषण आगे किया जाएगा।

1.2.1 सामाजिक परिवेश

स्वातंत्र्योत्तर भारत में सामाजिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित हुआ। स्वातंत्र्योत्तर भारत की युवा पीढ़ी की स्थिति को व्यक्त करते हुए डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय कहते हैं - "स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय जीवन की जो गतिविधि उसके सामने आई और द्वितीय महायुद्ध के फलस्वरूप आणविक विस्फोट तथा न्यूक्लियर और रासायनिक संहारक शक्तियों के फलस्वरूप उसने मानवता को विनाश के जिस कगार पर खडे देखा उससे वह कांप उठी, भय तथा आशंका से पीडित हो उठी। मानव जाति के स्वर्णिम विहान और मानव संस्कृति के प्रति उसकी

---

1. डॉ. मधुरेश, नई कहानी पुनर्विचार, पृ. 125

आस्था को ज़बरदस्त आघात पहूँचा और वह मोहभंग की स्थिति में पहूँचकर मानवता की गरिमा और मानवजाति की नियति के संबन्ध में चिंतित हो उठी।"[1] वास्तव में सन् 1947 के बाद की दुर्घटनाएँ तथा समस्याओं ने भारत के सामाजिक ढाँचे को मूल से पलट दिया। वह मोहभंग का दौर रहा था। सन् 1947 के बाद के सामाजिक परिवेश की ओर संकेत करते हुए अमरकांत कहते हैं - "स्वतंत्रता के बाद सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन की जो उम्मीदें की गई थीं, वे पूरी नहीं हुई। बेरोज़गारों की संख्या इतनी बढ़ गयी है कि कोई रास्ता नज़र नहीं आता। महँगाई सुरसा की तरह बढ़ रही है। जातिवाद और साम्प्रदायवाद दानव-दूतों की तरह फैल गए हैं। भ्रष्टाचार मूल्य बनता जा रहा है।"[2] किसी भी तरीके से धन-संचय, वैभव-प्रदर्शन में लोग विश्वास करने लगे हैं। झूठ, हिंसा, दंगे, धार्मिक-उन्माद धक्कम धुक्की, अवसरवाद की प्रवृत्तियाँ काफी बढ़ गई हैं। विवेकबुद्धि, कर्म, परिश्रम, त्याग व कुर्बानी के स्थान पर लफ्फाजी, खोखली भावुकता, झूठ व निकडम से बहुत जल्दी सफल होने तथा बडे-बडे ऐतिहासिक कार्य करने के कमाल दिखाएँ जा रहे हैं। मतलब स्वातंत्र्योत्तर भारत में संकीर्ण स्वार्थों की वजह से सामाजिक मूल्यों का ह्रास होता जा रहा था। बढ़ती महंगाई, बेरोज़गारी एवं गरीबी से जनता त्रस्त थी। सामाजिक ढाँचे में आए इन परिवर्तनों से पारिवारिक ढाँचा भी बदल रहा था। संयुक्त परिवारों का विघटन हुआ। परिवार में उलझनें उत्पन्न होने लगी। समाज में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था शोषक-शोषितों के बीच की खाई को बढाती रही।

---

1. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 9
2. अमरकांत, कुछ यादें कुछ बातें, पृ. 144

उपर्युक्त बातों से केवल यह निष्कर्ष निकालना सही नहीं होगा कि स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज केवल समस्याओं के घेरे में था। तटस्थ दृष्टिकोण से देखने पर यह भी स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता के बाद भारत के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक क्षेत्रों ने विकास भी हासिल किया है।

1.2.2 राजनीतिक परिवेश

स्वतंत्रता प्राप्ति भारतीय इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना थी। क्योंकि संपूर्ण देश को संक्रमण के महान् दौर से गुज़रना पड़ा। एक ओर सत्ता का संक्रमण हो रहा था तो दूसरी ओर ज़िंदगी के प्रत्येक क्षेत्र में भारतीयता की पुनःस्थापना अपेक्षित थी। दो सौ वर्षों की दासता के लंबे अरसे के बाद भारतीय जनमानस में स्वनिर्मित समाज की आशा जगी थी। लेकिन दुर्भाग्यवश स्वाधीनता प्राप्ति के साथ ही देश विभाजन और उसके परिणाम स्वरूप भीषण नरसंहार, गाँधीजी की हत्या जैसी ऐतिहासिक घटनाएँ हुईं जिससे चारों ओर फैली उमंग उदासी में बदल गयी। मतलब स्वतंत्रता के बाद देश में राजनीतिक अस्थिरता छा गई।

स्वतंत्र भारत की सरकार ने इस समस्या को सुलझाने की कोशिश की तथा नये लोकतांत्रिक शासनतंत्र से लोगों में नयी आकांक्षाएँ जगीं। राष्ट्रीय कांग्रेस ने शासन की बागडोर संभाली। कांग्रेस के अलावा अन्य राजनीतिक दलों का उदय हुआ। भिन्न-भिन्न विचारधाराओं तथा सिद्धांतोंवाले दल अपना प्रचार करने लगे। जनता में राजनीतिक जागरूकता बढ़ने लगी।

---

1. डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 9
2. अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ, भाग-1, भूमिका से

सन् 1962 में भारत की उत्तरी सीमा पर चीन का आक्रमण हुआ। चीन के हाथों हुए पराजय से जनता में क्षोभ और निराशा फैल गयी। सन् 1964 में नेहरू की मृत्यु से आधुनिक भारत ने एक महान कर्णधार खो दिया। सन् 1965 में हुए भारत-पाकिस्तान युद्ध में भारत को विजय प्राप्त हुई। लेकिन भारतीय राजनीति अपने आदर्शों एवं मूल्यों से दूर हटती गयी। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय कहते हैं - "परतंत्र भारत के सामने एक आदर्श था, लक्ष्य था, अनुशासन था और एकता के क्षेत्र में बंधे रहने की प्रबल आकांक्षा थी। किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद ही पुरानी पीढ़ी का आदर्श छिन्न-भिन्न हो गया। जीवन में कोई अनुशासन नहीं रह गया और देश के व्यापक हित के स्थान पर स्वार्थ एवं स्वरति का प्राधान्य हो गया। पुराने नेता विलासी ऐयाश और धनलोलुप बन गए।"[1] राजनीतिक दलों के बीच संघर्ष बढ़ने लगे। पिछले कई वर्षों से देश की राजनीति में सिद्धांतहीन आचरण, सत्ता के लिए उठा-पटक और सत्ताधारी दलों में गुटों की जोड़-तोड़ का कुछ ऐसा जोर रहा है कि मतदाता की पूरी कोशिश के बावजूद राजनीति दिशाहीन रहती है। इस प्रकार देखें तो स्वाधीनता प्राप्ति का अर्थ सिर्फ सत्ता के अंतरण तक सीमित हो जाता है। इस संदर्भ में शिवप्रसाद सिंह का कथन सार्थक लगता है - "यह ठीक है कि भारत 1947 में स्वतंत्र हुआ था, पर भारत अपनी स्वतंत्रता को स्वतंत्रता मानने के लिए भी स्वतंत्र नहीं है।"[2] इन तमाम विसंगतियों के बीच आज की भारतीय जनता यह निर्णय नहीं कर पा रही है कि उसके भविष्य का क्या होगा?

---

1. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, द्विदीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 19
2. शिवप्रसाद सिंह, आधुनिक परिवेश और नवलेखन, पृ. 1

1.2.3 आर्थिक परिवेश

ब्रिटीश तानाशाही द्वारा शोषित भारतीय जनता के उद्धार हेतु स्वतंत्र भारत की नयी सरकार ने कई योजनाओं को जन्म दिया। इन सबका उद्देश्य भारत के प्रत्येक नागरिक में आर्थिक आत्मनिर्भरता प्रदान करना था। किंतु इन सारी प्रयत्नों के बावजूद भी बेरोज़गारी, गरीबी तथा महंगाई निरंतर बढ़ती गयीं। इसका मूल कारण जनसंख्या का भयावह विस्फोट था। इसके साथ ही राजनीतिक तथा नौकरशाही स्तरों पर बढ़ते भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, भाई-भतीजावाद ने आर्थिक संकट से उत्पन्न असंतुलन को घनीभूत कर दिया। "गरीबी हटाने की योजनाओं का निर्धारण और कार्यान्वयन, सिर्फ एक आशय रहा, और जड़वत् नौकरशाही में कल्पना और स्फूर्ति का अभाव था।"[1] आर्थिक भ्रष्टाचार जनजीवन के तमाम पहलुओं को विकृत करने लगा। डॉ. पुरुषोत्तम दूबे के अनुसार - ".....सडक के एक ओर अशोक होटलों, राजभवनों, आधुनिकतम क्रीड़ा भवनों और गगनचुम्बी 'उषाकिरण' प्रसादों का निर्माण हो रहा है और दूसरी ओर संसार-भर की गरीबी के चिथडे लपेटे हुए हज़ारों नए झोंपडे रोज़ खडे होते जा रहे हैं।"[2] अर्थात् धन का संग्रह एक जगह पर बढता गया।

वस्तुतः स्वाधीनता के बाद की शासन पद्धति प्रकारांतर से पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की पोषक थी। फलतः अमीर अमीर होते गये और गरीब गरीब।

---

1. S.E. Dube, Contemporary India and its Modernisation, P. 5
2. डॉ. पुरुषोत्तम दूबे, व्यक्तिचेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ. 147

आर्थिक अभाव ने पारिवारिक संबन्धों को भी शिथिल कर दिया। व्यकत्ति निराश होकर कुंठाओं से ग्रसित होता गया।

1.2.4 सांस्कृतिक परिवेश

स्वातंत्र्योत्तर भारत की बदलती सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थितियों ने सांस्कृतिक जीवन को भी बहुत प्रभावित किया। देश विभाजन और उसके परिणाम स्वरूप हुए नरसंहार ने देश के नैतिक जीवन पर गहरा प्रभाव डाला। नैतिक मूल्यों का विघटन हुआ। विभाजन की अग्नि में राष्ट्रीय आदर्श एवं विश्वास झुलस गए। फलस्वरूप विघटनकारी प्रवृत्तियाँ बढने लगीं। वैज्ञानिक प्रगति ने मनुष्य को भौतिकवादी एवं वैज्ञानिक बना दिया। देश में बौद्धिकता का प्रभाव बढने लगा। परिणामतः धर्म, ईश्वर जैसी वस्तुओं के प्रति वह संदेह की दृष्टि से देखने लगा। परंपरागत रूढ़ मान्यताएँ खंडित हुई।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय संस्कृति में पाश्चात्य संस्कृति का भी प्रभाव दृष्टव्य है। शहरीकरण एवं महानगरीकरण की प्रक्रिया ने भी स्वाधीन भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया। महानगरीय जीवन की व्यस्तता ने संबन्धों को भी शिथिल कर दिया। व्यस्त ज़िंदगी से यहाँ के सांस्कृतिक जीवन में अपरिचय, भय, अकेलापन, संत्रास, कुंठा जैसे भाव व्याप्त हो गये। रोज़गार की तलाश में भटकी जनता में सांस्कृतिक द्वंद्व एवं सांस्कृतिक विस्थापन की समस्या उत्पन्न होने लगी। वास्तव में स्वाधीन भारत की जनता दिशाहीन होकर भटकने लगी। उनके सांस्कृतिक जीवन में निराशा एवं विषमता व्याप्त होने लगीं।

1.3 कहानी आंदोलन

स्वातंत्र्योत्तर परिवेश में हिन्दी कहानी की विकास यात्रा को सबसे व्यापक रूप कहानी आंदोलनों से मिला है। मुक्तिबोध के शब्दों में - "कोई भी नया साहित्यिक आंदोलन उन विशेष कालगत स्थितियों में पैदा होता है, जिन्हें हम सामाजिक विकास की महत्वपूर्ण श्रृंखला कहते हैं।"[1] इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर कहानी में आंदोलनों की एक लंबी कतार विद्यमान है।

स्वतंत्रता के बाद नई कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी, सहज कहानी, समांतर कहानी, सक्रिय कहानी, समकालीन कहानी, जनवादी कहानी आदि आंदोलनों से गुज़रकर हिन्दी कहानी अपने समकालीन समय तक पहूँच गयी है।

1.3.1 नई कहानी

नई कहानी आंदोलन का जन्म सन् 1950 के आसपास हुआ। सन् 1950 के सन् 1960 तक, एक दशक के दौरान लिखी गई कहानियों को नई कहानी आंदोलन के साथ जोडा गया है। कमलेश्वर के अनुसार 'नई कहानी' का नामकरण दुष्यंत कुमार ने किया था। लेकिन राजेन्द्र यादव इसके नामकरण का श्रेय नामवरसिंह और दुष्यंतकुमार को देते हैं। नई कहानी आंदोलन की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए कमलेश्वर कहते हैं - "विभाजन, मोहभंग, यांत्रिकता, विसंगतियाँ, परिवारों का विघटन, राजनीतिक भ्रष्टाचार और व्यापक असंतोष के बीच जो मनुष्य सॉस ले

---

1. मुक्तिबोध, मुक्तिबोध रचनावली, भाग 5, पृ. 318

रहा था, जिसका समकालीन साहित्य जवाबदेही से कतरा रहा था.... या जिसके आंतरिक और बाह्य संकट को अभिव्यक्ति नहीं दे पा रहा था, वह मनुष्य इतिहास के क्रम में अपने पूरे परिवेश को लिए दिए एक अवरुद्ध राह पर संभ्रमित और चकित खडा था।"[1] इसी माहौल में नई कहानी आंदोलन का प्रस्फुटन हुआ था। नई कहानी के प्रतिपाद्य के संबन्ध में कमलेश्वर का कथन है ".....उसकी चेतना के अवरुद्ध स्रोतों को खोलने के लिए और उसी के आसपास नई कहानी एक गतिवान प्रक्रिया को जन्म देती है और जीवन को झेलनेवाले केन्द्रीय पात्रों की ओर अभिमुख होती है। इतिहास क्रम की यथार्थ परिस्थितियों 'से' निकलकर आया हुआ मनुष्य फिर कहानी का केन्द्र बनता है और उपजीवी रीतिकालीन पात्रों का दौर दौरा शुरू होता है।"[2] इस प्रकार स्वतंत्रता के पश्चात् नई कविता के समानांतर नई कहानी का दौर शुरू होता है। नया कहानीकार अपनी हर कहानी में यथार्थ को खोजता है और उसकी अभिव्यक्ति करता है। वह किसी भी प्रकार के आरोपण को अस्वीकार करते हुए आधुनिक भारतीय व्यक्ति को उसके भारतीय परिवेश में प्रस्तुत करता है। वह अब तक की आरोपित झूठी और खोखली मर्यादा तथा नैतिकता का भंग करते हुए व्यक्ति की उस नैतिकता को प्रमुखता देता है जो काले और सफेद की धार्मिक मान्यताओं को अस्वीकार कर मनुष्य के उन मूल्यों को प्रश्रय देता है, जो उसके अस्तित्व की अनिवार्य शर्त बन गए हैं। वह धार्मिक मानवतावाद से अलग न्याय और समता पर आधारित व्यापक मानवीय मूल्यों को

---

1. कमलेश्वर, नई कहानी की भूमिका, पृ. 14
2. वही, पृ. 15

स्वीकार करता है। नया कहानीकार यह धर्म, दर्शन, तन्त्र या मतवाद के पक्ष में नहीं है, वह परिवेश में डूबे मानव की आकांक्षाओं और अपेक्षाओं को स्वीकार करता है। कमलेश्वर के शब्दों में - "नयी कहानी इसीलिए मानव-मानव के नए उभरते और शक्ल लेते या टूटते संबन्धों को सबसे पहले रेखांकित करती है, क्योंकि वह अपने 'मैं' से निकलकर 'वह' या उसकी प्रामाणिक अभिव्यक्ति करती है, और अपने 'मैं' से निकलकर जैसे ही वह दूसरे से संबद्ध होती है, प्रतिबद्ध हो जाता है। नये कहानीकार की प्रतिबद्धता का अर्थ इसलिए जीवन से प्रतिबद्धता का है, मत मतान्तरों, फैशनों या वादों से आक्रान्त होने का नहीं।"[1] अर्थात् नयी कहानी जीवन से प्रतिबद्धता की कहानी है।

वास्तव में नयी कहानी का परिवेश पूर्णतः नया था। लेकिन परंपरा से कटकर इसका अस्तित्व नहीं है। स्वातंत्र्योत्तर परिवेश और इस युग के व्यापक मानसिक उद्वेलन ने संपूर्ण चेतना को नए भावबोध से सम्पृक्त कर दिया था। इस प्रकार इस परिवर्तित स्थिति ने सर्जनात्मक स्तर पर जिस चुनौती का सामना किया, वहीं से नयी कहानी की शुरुआत होती है। इससे समझा जा सकता है कि नई कहानी के पीछे परिस्थिति चेतना और ऐतिहासिक परंपरा रही है।

अर्थात् नयी कहानी का उदय ऐतिहासिक संदर्भ में हुआ। उसने केन्द्रीय व्यक्तियों की तलाश की और उन्हें ही पात्रों के रूप में प्रस्तुत किया। यानी यथार्थ परिवेश में आदमी को देखा गया। यथार्थवादी वातावरण में लाकर उस आदमी को

---

1. कमलेश्वर, नई कहानी की भूमिका, पृ. 15

झूठी ज़िंदगी जीने के लिए विवश नहीं किया गया। यह कला का एक महत्वपूर्ण मूल्य है कि 'व्यक्ति की निजता' को समादर मिला। कहानी गढ़ने या लेखक का साक्षी बनने के लिए उसे संवाद रटाए नहीं गए। नई कहानी का व्यक्ति लेखक का गवाह नहीं, स्वयं अपनी बात का और अपना गवाह है।

नामवरसिंह के शब्दों में "नये कहानीकारों में से बहुतों ने आजकल कहना शुरू कर दिया है कि इस पीढ़ी के कहानीकारों में मानवीय मूल्यों के संरक्षण, जीवनी शक्ति के परिप्रेषण एवं सामाजिक नवनिर्माण की उत्कट प्यास है।"[1] जिस प्रकार तारसप्तक में अनेक कवि जुडे और प्रयोगवाद और उसके उपरांत नयी कविता सामने आई उसी प्रकार नयी कहानी का भी कई कहानीकारों ने मिलकर स्वरूप निर्धारित किया और जन्म दिया। इनमें मोहनराकेश, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी, फणीश्वरनाथ रेणु, मन्नू भण्डारी, अमरकांत, मार्कण्डेय और उषा प्रियंवदा का नाम लिए जा सकते हैं। इसमें मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेन्द्र यादव की त्रयी बहुत ही प्रसिद्ध है।

नयी कहानी ने अनुभव की प्रामाणिकता के साथ ही समकालीन जीवन की भी व्यापक पहचान की है और मार्क्सवाद तथा अस्तित्ववादी विचारधारा के बीच मनोवैज्ञानिक कहानियों का भी सृजन किया है। मध्यवर्गीय जीवन का संघर्ष अनेक रूपों में सामने आया है। "आज बेरोज़गारी और स्त्रियों के साथ ही राजनीतिक भ्रष्टाचार भी बडे पैमाने पर है। गाँव से लेकर विभिन्न स्तरों पर भी मूल्य बदल रहे

---

1. नामवरसिंह, कहानी : नई कहानी, पृ. 19

हैं और विसंगतियों का जन्म हो रहा है। नयी कहानी ने इन सभी को व्यापक स्तर पर व्यक्त भी किया है।"[1] महानगरीय परिवेश की भी अनेक कहानियों की रचना की गयी है। इस तरह से मध्यवर्गीय जीवन मूल्य एक नयी तरह की समस्या बनकर सामने आए हैं। मध्यवर्गीय मूल्यबोध से आधुनिकताबोध भी उभरा है। अंतर्जातीय प्रेमसंबन्धों के प्रति लोगों का रुझान बहुत ही धीमी गति से विकसित हुआ है। आधुनिकताबोध के अंतर्गत मार्क्स और फ्राइड के विचारों ने मनुष्य को अपने मूल्यों की स्थापना की ओर प्रवृत्त किया है और अब ईश्वर केन्द्रित मूल्यों के बजाय मानव केन्द्रित मूल्य ही महत्वपूर्ण हो गए हैं।

वस्तुतः निर्मल वर्मा का कहानी संग्रह 'परिंदे' आधुनिकता का आरंभ करते हुए नयी कहानी की पहली कृति प्रामाणित होती है। यद्यपि कमलेश्वर मोहन राकेश और राजेन्द्र यादव ने भी इसमें प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया है। निर्मल वर्मा कहानी के आँदोलन से अवधारणा के स्तर पर नहीं जुडे जबकि नयी कहानी के आंदोलनों में राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर मोहन राकेश और शिवप्रसाद सिंह की प्रत्यक्ष भूमिका रही है।

सामाजिक पारिवारिक संबन्धों में व्यापक परिवर्तन भी वह घटना है, जिसे किसी भी स्थिति में नकारा नहीं जा सकता। महानगरों में ही नहीं कस्बों और गाँवों में भी अलगाव और बिखराव की प्रवृत्ति बढ़ती गयी। स्त्री स्वतंत्रता उभरकर आई और परिवार आत्मकेन्द्रित हो गए। यह अलगाव और अजनबीपन आधुनिकताबोध

---

1. राजेन्द्र मिश्र, कहानी आंदोलन और प्रवृत्तियाँ, पृ. 62

को व्यक्त करता है। परिवार के आंतरिक और बाहरी स्वरूप में परिवर्तन और संघर्ष महत्वपूर्ण हो गया। नये कहानीकारों ने स्त्री-पुरुष के प्रेम संबन्धों को भी अनेक कोणों से देखा है। उसमें रोमानीपन न होकर बौद्धिकता का समावेश किया गया है। मोहन राकेश की 'मिस पाल', राजेन्द्र यादव की 'एक कमज़ोर लडकी की कहानी', कमलेश्वर की 'नीली झील', 'निर्मल वर्मा की 'लवर्स', सुधा अरोडा की 'एक सेंटिमेंटल डायरी की मौत', 'रेणु की 'तीसरी कसम', मन्नू भंडारी की 'ऊँचाई', कृष्णा सोबती की 'डार से बिछुडी', मार्कण्डेय की 'एक दिन की डायरी', श्रीकांत वर्मा की 'परिणय', शेखर जोशी की 'कोसी का घटवार' आदि कहानियाँ इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं।

"नई कहानी की सृजनात्मकता में पुरानी और नयी पीढ़ी का मूल्यगत संघर्ष भी व्यक्त हुआ है। सामाजिक और पारिवारिक परिवेश के बदलने के साथ पुराने आदर्श निरर्थक और खोखले लग रहे थे। समाज में व्यापक आर्थिक परिवर्तन हो रहा था और नयी पीढ़ी नयी जागरूकता और शिक्षा के बीच परंपरागत सामाजिक व्यवस्था को अपने प्रतिकूल पा रही थी। आधुनिकता की नयी प्रवृत्तियाँ और उभरने हुए नए मूल्यों के बीच हर स्तर पर दो पीढियों का संघर्ष सामने आ रहा था।"[1] इन समस्याओं को उजागर करनेवाली अनेक कहानियाँ लिखी गयीं जिसमें मोहन राकेश की 'जंगला' और 'वारिस', भीष्म साहनी की 'कटघरे' और 'कंठहार', निर्मल वर्मा की 'अंधेरे में', और 'एक दिन का मेहमान', कमलेश्वर की

---

1. राजेन्द्र मिश्र, कहानी आंदोलन और प्रवृत्तियाँ, पृ. 62

'किसके लिए', धर्मवीर भारती की 'यह मेरेलिए नहीं', गिरिराज किशोर की 'चूहे' आदि प्रमुख हैं।

भारत का विभाजन देश के लिए बहुत बडी घटना भी। सांप्रदायिकता इस विभाजन का आधार रहा है और उससे देश की सारी मान्यताओं पर ज़बरदस्त आघात लगा है। विभाजन के बाद भी भारत ने धर्म निरपेक्षता को ही अपनाया और सभी धर्मों के प्रति समानता के आधार पर लोकतंत्र को स्वीकार किया। विभाजन के कारण पूरा देश दंगों से ग्रस्त हुआ था और इस नरसंहार को अनेक कहानीकारों ने देखा। मन्नू भंडारी की 'सज़ा', कमलेश्वर की 'किसके लिए', शेखर जोशी की 'प्रति प्रशिक्षीत' आदि कहानियाँ इसके लिए उदाहरण है। परंपरा के प्रति विद्रोह और सामाजिक रूढियों पर व्यापक रूप से प्रहार भी नयी कहानी की एक विशेषता है। भीष्म साहनी की 'पहला पाठ', मन्नू भंडारी की 'सयानी बुआ', रेणु की 'तीर्थोदक' आदि कहानियों में इसका जिक्र हुआ है।

नई कहानी की इतनी सारी विशेषताओं के बीच कुछ खामियाँ भी हैं। "नयी कहानी आंदोलन की कहानियों पर कुछ अपवादों को छोडकर रचनाकार का व्यक्तित्व इतना अधिक छाया रहा है कि उनकी फसल में कीडे लग गए। इस दौर का रचनाकार कुछ बुनियादी बात भूल गया कि खुली हवा, धूप, चांदनी में ही अच्छी फसल और रचना सही प्रकार से अती पनपती-फैलती और पकती है।"[1]

---

1. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 753

इस प्रकार नई कहानी खामियों और खूबियों के बीच पनपी और धीरे-धीरे हिन्दी कहानी के इतिहास में विलीन होने लगी।

1.3.2 साठोत्तरी कहानी

नई कहानी के बाद जिन कहानी आंदोलनों का उदय हुआ था, कुलमिलाकर उन्हें साठोत्तरी कहानी कह सकते हैं।

1.3.2.1 अकहानी

साहित्यिक विचारधाराएं सामाजिक बदलाव के अनुरूप नया रूप धारण करती रहती हैं। "साहित्य अपने बदलाव के बावजूद पिछले साहित्य से तारतम्य जोडे रहता है। वह अपने समय संदर्भों के दबाव से नयापन ज़रूर धारण करता है, किंतु वह एकाएक नहीं खडा होता, वह पिछले साहित्य से इमर्ज करता है और उससे न जाने कितने अंतरंग स्तरों पर जुडा रहता है।"[1] इस प्रकार अकहानी आंदोलन का जन्म पूर्ववर्ती कथाधारा में आये अवरोध को तोडने के लिए हुआ था। जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, और गंगाप्रसाद विमल का अकविता आंदोलन में विशेष महत्व है। फ्रांस के 'ऐंटी स्टोरी' के प्रभाववश अकहानी आंदोलन चला था।

अकहानी में 'अ' शब्द निषेध का सूचक है। मतलब अकहानी में कहानीपन का अभाव है। पूर्ववर्ती कहानी की सारी रूपगत - आशयगत धारणाओं के प्रति अकहानी नकार की दृष्टि रखती है। मधुरेश के शब्दों में - "अकहानी नयी कहानी

---

1. रामदरश मिश्र, हिन्दी कहानी अंतरंग पहचान, पृ. 107

में वैचारिकता के क्षरण और राजनीति के निषेधवाली दृष्टि का ही विकास थी - एकांगी, अतिरेकी और अतिरंजनापूर्ण विकास। हिन्दी की साठोत्तरी कविता की तरह, जिसे अकविता आँदोलन के रूप में जाना जाता रहा है, अकहानी का भी मूल स्वर विरोध और निषेध का है।"[1] इस निषेधी स्वर की उत्पत्ति कोई अस्वाभाविक घटना नहीं थी। बल्कि स्वाभाविक थी। सातवें दशक तक आते-आते भारतीय जनजीवन को अनेक विसंगतियों का सामना करना पडा। स्वतंत्र भारत में देखे जो सपने थे, वे टूट रहे थे। समाज गिरता जा रहा था। सब कहीं भ्रष्टाचार और बेरोज़गारी फैल रही थी। ऐसे संदर्भ में निषेधी भावना का जन्म स्वाभाविक था। अकहानी पर अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव है। अकहानी असंबद्धता को सबसे ज़्यादा महत्व देती है। इसलिए 'समकालीन कहानी का रचनाविधान' में गंगाप्रसाद विमल ने कहा है कि अकहानी मूल्यांकन आधारित मापदंडों को स्वीकार नहीं करती। अकहानी में एबसर्ड दर्शन का प्रभाव भी है जो व्यर्थताबोध और सामंजस्यहीन विचारों का अस्तित्ववादी अंकन है। इस विचारधारा से ही अकहानी की अनेक प्रवृत्तियों का जन्म हुआ है। अकहानी के लिए किसी कथानक या घटनाक्रम की आवश्यकता नहीं इसलिए वह कहानी में किसी घटना या कथा को स्वीकार नहीं करती।

नयी कहानी की अपेक्षा अकहानी में अपनी स्वतंत्र चरित्रात्मकता का विकास विद्यमान है। "इनके यहाँ पात्रों के हुलिए निहायत व्यक्ति केन्द्रित और

---

1. मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, पृ. 123

आत्मनिष्ठ रहे हैं। वे नयी कहानी की तरह कथावस्तु को किसी दृष्टांत से नहीं जोडना चाहते।"[1] अकहानी में कहानी का विकास प्रसंगों के माध्यम से होता है। उसकी कथावस्तु में मनुष्य के अस्तित्व को चुनौती देनेवाली त्रासद स्थितियाँ और भयावह संदर्भ आ जाते हैं।

अकहानी के केन्द्र में है - निरर्थकताबोध। स्वतंत्रता के कुछ वर्ष बाद मोहभंग की स्थिति आती है। इसका प्रभाव साहित्य में भी पडा। कहानी ने मानसिक जीवन की घटनाओं को उभारनेवाला इतिहास निर्मित किया। इस समय तक राजनीति के प्रति अस्वीकार और उदासीनता का भाव गहरा होता गया। परिणामस्वरूप अकहानी ने अपनी अंतर्वस्तु में बदलाव किया और फंतासी या अमूर्तन के प्रति रुझान भी दिखाया। अकहानी ने यथार्थ के प्रति नकारात्मक दृष्टि अपनायी। "उसने यथार्थ को अस्वीकार किया और मृत्यु के प्रति निस्संग भाग रखा। यही कारण है कि कहानी को निषेधात्मक आयाम के रूप में अंकित करने की स्थिति को ही अकहानी कहा गया है और यहीं कहानी का नयापन कहानी की अस्वीकृति में बदला है, जिसे 'अ' सर्वनाम से व्यक्त किया गया है।"[2]

नयी कहानी में तो परंपरागत मूल्यों को नये मूल्यों की ढालने का प्रयास हुआ था पर अकहानी में मूल्य की बात ही नहीं उठती। वह तो मूल्यहीनता में उभरती है। मधुरेश के शब्दों में "जीवन में स्थापित मूल्यों और नैतिक हस्तक्षेप का विरोध जिस मनुष्य को अकहानी में प्रस्तुत करता है वह विद्रूपताओं और कुंठाओं

---

1. डॉ. साधना शाह, हिन्दी कहानी संरचना और संवेदना, पृ. 60
2. डॉ. राजेन्द्र मिश्र, कहानी आंदोलन और प्रवृत्तियाँ, पृ. 97

का शिकार मनुष्य है। जीवन को विद्रूप बनानेवाली स्थितियों को वह सिर्फ झेल सकता है, काफी कुछ उदासीन बने रहकर उनसे मुक्त होने की ऐसी भी सक्रियता के बिना सिर्फ एक अर्थहीन प्रतीक्षा करते हुए। कुंठाओं और भावनाओं के ध्वंस से उसका मनोगत निर्मित है। यह मनुष्य जन्मजात विद्रोही है।"[1] यह विद्रोह ही अकहानी का निषेध है।

अकहानी मानवीय संबन्धों की पुरानी मान्यताओं को भी बदलती है। संबन्धों का यह बदलाव अकहानी को पूर्ववर्ती कहानी से कई स्तरों पर अलगाता है। फलस्वरूप संबन्धों के बिखराव में नयी पीढ़ी का पुराने के प्रति वितृष्णा का भाव अकहानी में उजागर हुआ है। 'शीर्षकहीन', 'पिता', 'रक्तपात' आदि कहानियाँ इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। इसमें परंपरागत पति-पत्नी संबन्धों पर प्रश्नचिह्न लगे हैं। वैवाहिक जीवन की पवित्रता, सतीत्व आदि मूल्यों का इसमें तिरस्कार हुआ है। स्त्री-पुरुष के बीच सिर्फ शारीरिक संबन्धों का ही महत्व रह गया है। प्रेम का आदर्श रूप यहाँ नहीं है। संबन्धों के इस बदलाव और बिखराव के कारण अकहानी में अकेलापन, आत्मनिर्वासन, संत्रास और अस्तित्व संकट जैसे भाव उभरकर सामने आए।

अकहानी से तात्पर्य निषेधात्मकता की कहानी से है। "अकहानी के संबन्ध में यही कहा जा सकता है कि वह कहानी से अलग कहानी की पहचान है।"[2]

---

1. मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, पृ. 124
2. रामदरश मिश्र, कहानी आँदोलन और प्रवृत्तियाँ, पृ. 102

अकहानी में सारा चिंतन स्त्री-पुरुष संबन्धों के आसपास घूमता है। कहानी में घटनाओं की नहीं मानसिक स्थितियों की प्रमुखता होती है। अकहानी आंदोलन ने स्त्री-पुरुष के काम संबन्धों पर आधारित पक्षों को उजागर किया है। सुधा अरोडा की 'एक सेंटिमेंटल लडकी की मौत' इसके लिए उदाहरण है जो अपने अतीत से मुक्ति चाहनेवाली एक सेंटिमेंटल लडकी की कहानी है।

अकहानी, विसंगतिबोध, संत्रास, अकेलेपन, टूटन, मृत्युबोध, लिपलिजेपन को आज के जीवन का यथार्थ मानकर रूपायित करना चाहती है। अकहानी सामाजिक मूल्यवादिता के प्रति उदासीन एवं विरोध भी है। अकहानी या अकविता का दौर एक तरह से राष्ट्रीय जीवन में मोहभंग का या मूल्य टूटन का दौर रहा है। रामदरश मिश्र के शब्दों में "....इन कहानीकारों ने मूल्यहीनता और विसंगतिबोध को मूलतः यौन-संदर्भों में खोजा, बृहत्तर सामाजिक जीवन के बीच नहीं, दूसरे इन्होंने पश्चिमी फारमुलों का सहारा लेकर अपने संदर्भों में प्राप्त सत्य को असत्य की सीमा तक खींचकर अंतर्राष्ट्रीय बनाने का प्रयास किया, या केवल फारमुलों से ही एक असत्य लोक की रचना कर ली। इस प्रकार अकहानी की दुनिया न तो व्यापक बन सकी और न प्रामाणिक।"[1] मतलब अकहानी आंदोलन की भी आयु बहुत लंबे समय तक नहीं थी।

कृष्णबलदेव वैद की 'त्रिकोण', 'ऋण', 'नीला अंधेरा', रमेश बक्शी की 'पिता-दर-पिता', गिरिराज किशोर की 'रिश्ता', दूधनाथ सिंह की 'दुखान्त', 'विजेता',

---

1. रामदरश मिश्र, कहानी आँदोलन और प्रवृत्तियाँ, पृ. 102

श्रवण कुमार की 'अंधेरे की आँखें', रवीन्द्र कालिया की 'नौ साल छोटी पत्नी', 'एक डरी हुई औरत', भीमसेन त्यागी की 'दीवारें ही दीवारें', प्रियदर्शी की 'खलल', 'समय-व्यथा', ज्ञानरंजन की 'पिता', 'छलांग शेष होते हुए' आदि इस दौर में लिखी गई कहानियों में प्रमुख है।

1.3.2.2 सचेतन कहानी

नई कहानी में विद्यमान आत्मपरकता के तत्व के विरोध के रूप में सचेतन कहानी आंदोलन की शुरुआत हुई। सन् 1964ई. नवंबर में आधार पत्रिका का सचेतन कहानी विशेषांक प्रकाशित हुआ। इसके संपादक थे महीप सिंह। इस विशेषांक से सचेतन कहानी आँदोलन का सूत्रपाद माना जाता है। इस आंदोलन में महीपसिंह के अतिरिक्त आनन्द प्रकाश जैन, कमल जोशी, कुलभूषण, जगदीश चतुर्वेदी, धर्मेन्द्र गुप्त, प्रियदर्शी, प्रकाश, बलराज पंडित, मधुकर सिंह, मनहर चौहान, ममता अग्रवाल, योगेश गुप्त, रामकुमार भ्रमर, वेदग राही, शकुन्तला शुक्ल, शक्तिपाल केवल, श्याम परमार, सुखवीर हृदयेश, हिमांशु जोशी आदि कहानीकार भी शामिल हुए। इनकी कहानियाँ 'आधार' के सचेतन विशेषांक में छपीं।

सचेतन के स्वरूप को व्यक्त करते हुए महीप सिंह ने लिखा है - "सचेतन एक दृष्टि है। वह दृष्टि जिसमें जीवन जिया भी जाता है और जाना भी जाता है। अपने संक्रान्तिकाल में चाहे हमें जीवन अच्छा लगे या बुरा लगें, चाहे उसे घूँट-घूँट पीकर हमें तृप्ति प्राप्त हो, चाहे नीम के रस की तरह हमें उसे आँखें मूँदकर

निगलना पडे परंतु जीवन से हमारी संपृक्ति छूटती नहीं। कडुए घूँटों में घबडा कर जीवन से भाग खडे होने की बात वैयक्तिक रूप में मानव इतिहास में अनेक बार दोहराई गई है और हर बार किसी-न-किसी प्रकार का दार्शनिक बौद्धिक आधार देकर उसके औचित्य की स्थापना का प्रयास किया गया है। परंतु मनुष्य की प्रवृत्ति जीवन से भागने की नहीं रही है। जीवन की ओर भागना ही उसकी नयति है...."[1] महीपसिंह सचेतन कहानी को नई कहानी की निष्क्रियता का प्रतिरोध मानते हैं।

सचेतन कहानी व्यष्टि की नहीं समष्टि की कहानी है। यह व्यक्तिवाद के बजाय सामाजिकता से जुडती है। यह व्यक्तिमन को नहीं सामाजिक परिवेश को महत्व देती है। महीपसिंह के कथन से ही स्पष्ट है कि यह कहानी ज़िंदगी की स्वीकृति की कहानी है। अकहानी की तुलना में सचेतन कहानी ज़िंदगी को स्वीकारती है इसलिए वह विसंगति और अकेलेपन का अस्वीकार करती है। इस दृष्टि से सचेतन कहानी अस्तित्ववाद का विरोध करती है और मनुष्य की सार्थकता की खोज करती है। मधुरेश के अनुसार "सचेतन कहानी में, रचना और अवधारणा, दोनों स्तरों पर ही निषेध, विरोध और अस्वीकार की भूमिका का विशेष महत्व रहा है।"[2]

अकहानीकारों ने पारिवारिक संबन्धों से जुडी कहानियों का सृजन किया है। स्त्री-पुरुष संबन्धों ने आए बदलाव का अंकन सचेतन कहानीकारों ने किया है।

---

1. आधार, सचेतन कहानी विशेषांक, संपादकीयस पृ. 12
2. मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, पृ. 113

महीप सिंह की 'स्वराघात', 'उलझन', 'पानी और पुल', 'कील', 'सीधी रेखाओं का वृत्त', 'शोर', 'सन्नाट्टा', 'सहमे हुए', 'धूप की उँगलियों के निशान', 'दिल्ली कहाँ है?', 'शोक' आदि कहानियाँ इस कोटि में आती है। समकालीन जीवन यथार्थ के विभिन्न आयामों को सचेतन कहानी प्रस्तुत करती है। लोग व्यक्तिगत स्तर पर अनेक यातनाओं से ग्रस्त होते हैं और संबन्धों के टूटन के भीतर से गुज़रते हैं। महीपसिंह की कहानी 'कील' इन समस्याओं को प्रस्तुत करती है।

औद्योगीकरण के आगमन से भारत ही नहीं समस्त दुनिया का नक्शा ही बदल गया। मशीनीकरण के आगमन से महानगरों की ज़िंदगी यांत्रिक बन गई। मनुष्य कई तरह की यंत्रणाओं का शिकार होता रहा। "कभी-कभी व्यक्ति अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करते हुए घुटन, बेबसी और डर का सामना करता है। एक ओर वह टेलिविज़न के वर्चुअल यथार्थ में जीता है और दूसरी ओर वास्तविकता का सामना भी करता है।"[1] महानगरीय जीवन की इस सच्चाई का मतलब महानगरीय जीवन की भीड़ और प्रदूषण का चित्रण सचेतन कहानीकारों ने किया है। योगेश गुप्त की 'टूटा हुआ कोना', 'एक ऊँचा मकान', 'सीट', 'भीड नं-2' आदि कहानियाँ इसके लिए उदाहरण है।

नई कहानी की प्रतिक्रिया के रूप में स्थापित हुई सचेतन कहानी को सक्रिय भावबोध की कहानी भी कहा गया, जिसने अकहानी की व्यर्थताबोध का भी विरोध किया। यह शिल्प का नहीं विचार का आंदोलन है। सहजता इन कहानियों

---

1. राजेन्द्र मिश्र, कहानी आंदोलन और प्रवृत्तियाँ, पृ. 110

की एक विशेषता है। सचेतन कहानी की सहजता के संबन्ध में रामदरश मिश्र कहते हैं - "सहजता आती है अपने परिवेश के जीवंत बुनियादी यथार्थ की सही पहचान से। जो यथार्थ है, वही सहज है। इस सहजता की प्राप्ति सतह पर की घटनाओं के संकलन से नहीं होती, वरन् बदलते हुए युग और परिवेश के दबावों से बनते-बिगडते मानव संबन्धों, मूल्यों और चेतनाओं के संक्रान्त रूप की सही पहचान से होती है।"[1] सहजता की यह विशेषता नयी कहानी की कुछ अच्छी कहानियों में भी द्रष्टव्य है। लेकिन आगे चलकर नई कहानी अपनी सहजता खोकर कृत्रिम यथार्थ की ओर मुडने लगी। इस अवसर पर सचेतन कहानीकारों ने सहजता पर अधिक बल देना चाहा। इसलिए सहजता सचेतन कहानी की एक प्रमुख विशेषता बनी।

नई कहानी में विचारतत्व का बहिष्कार था। इसलिए उसमें कामुकता, भावुकता और संवेदना की प्रमुखता रही किंतु सचेतन कहानी में विचारतत्व की प्रमुखता रही। वैचारिकता को जीवन और साहित्य दोनों के लिए अनिवार्य माना गया। कहानी वैयक्तिकता की संकीर्ण सीमा से मुक्त होकर पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय संदर्भों के साथ जुडने लगी।

अन्य साहित्यिक आंदोलनों की भांति सचेतन कहानी आंदोलन की धारा भी धीरे-धीरे क्षीण होती गई। महीपसिंह ने भी यह स्वीकार किया है कि यह आंदोलन तत्कालीन एवं प्रासंगिक था, जिसका किसी शाश्वत दर्शन या विचार के साथ संबन्ध भी नहीं था। इस आंदोलन की समाप्ति का एक कारण तो यह था कि इस आंदोलन से जुडे कुछ लेखक बहुत जल्दी इससे हट गए।

---

1. रामदरश मिश्र, हिन्दी कहानी अंतरंग पहचान, पृ. 125

1.3.2.3 सहज कहानी

एक दशक तक नई कहानी आंदोलन की विवेचना का सशक्त मंच बनी रही थी 'नई कहानियाँ' नामक पत्रिका। सन् 1968 में इस पत्रिका का स्वामित्व अमृतराय ने खरीद लिया। बाद में उनके संपादकत्व में इसका प्रकाशन इलाहाबाद से होने लगा। इस पत्रिका का संपादकीय 'सहज कहानी' शीर्षक के अंतर्गत सहज कहानी नामक एक नए आँदोलन के सूत्रपात करने की सूचना उन्होंने दी। संपादकीय में उन्होंने घोषणा की कि नई कहानी के आंदोलन की उपलब्धियों का लेखा-जोखा, इतिहास, अपने समय से निश्चित करेगा, लेकिन इतना तो साफ है कि नई कहानी की खोज में सहज कहानी खो गई। सहज कहानी आंदोलन के प्रस्तोता अमृतराय के शब्दों में "मोटे रूप में इतना ही कह सकते हैं कि सहज वह है, जिसमें आडंबर नहीं है, बनावट नहीं है, ओढा हुआ मैनरिज़्म या मुद्रा-दोष नहीं है, आइने के सामने खडे होकर आत्मरति के भाव से अपने ही अंग-प्रत्यंग को अलग-अलग कोणों से निहारते रहने का प्रबल मोह नहीं है, किसी का अंधानुकरण नहीं है।"[1] सहज कहानी, कहानी में सहजता की माँग करती है। "इस प्रकार सहज कहानी में सहज, अकृत्रिम रूप से जीवन को कहानी का कथ्य बनाने और कहानी को परिवेश, समाज की विभिन्न समस्याओं से जोडने का प्रबल आग्रह है।"[2] वस्तुतः अमृतराय ने यह घोषित किया था कि जीवन की प्रस्तुति सहज रूप में करते हुए जीवन के

---

1. अमृतराय, आधुनिक बोध की संज्ञा, पृ. 100
2. पुष्पपाल सिंह, समकालीन कहानी नया परिप्रेक्ष्य, पृ. 91

कटु यथार्थों और व्यवस्था की भ्रष्टताओं को उजागर करना कहानी का लक्ष्य होना चाहिए। सहज कहानी के नाम से अमृतराय ने एक व्यापक दृष्टि की स्थापना करना चाहा था लेकिन संघटन और प्रचार के अभाव में वह सफल नहीं हो सका।

1.3.2.4 समांतर कहानी

सातवें दशक के अंत होते-होते यह महसूस किया जाने लगा कि देश का एक बहुत बडा वर्ग कहानियों में उपेक्षित हो रहा है। यह वर्ग 'आम आदमी' के नाम से पुकारा गया और इसको केन्द्र में रखकर कहानी का सृजन आरंभ हुआ। दूसरे शब्दों में कहें तो सातवें दशक की हिन्दी कहानी की प्रमुख कमी वस्तुपरकता थी। इस अभाव की पूर्ति के परिणाम स्वरूप आठवें दशक में एक नए कहानी आंदोलन की शुरुआत हुई। इस आंदोलन के प्रमुख प्रवक्ता कमलेश्वर थे। सन् 1972 के आसपास कमलेश्वर ने 'सारिका' पत्रिका में 'मेरा पन्ना' नामक स्तंभ आरंभ किया और इससे समान्तर कहानी आंदोलन का श्रीगणेश माना जाता है। इसके बाद समांतर कहानी से संबन्धित अनेक वैचारिक लेख प्रकाशित हुए। समांतर कहानी एक व्यापक रूप स्वीकार करने लगी। बाद में 'सारिका' में समांतर कहानी पर तीन विशेषांक निकाले गए। समांतर कहानी आंदोलन की औपचारिक घोषणा करते हुए 'समांतर' नामक एक संग्रह निकले। इसमें 28 पृष्ठों की एक भूमिका भी दी गई थी जिसमें नयी रचनाशीलता के संदर्भ में लेखक की प्रतिबद्धता पर विचार किया गया था। 'समांतर एक' में अनेक कहानीकारों की कहानियाँ संकलित हुई। इसमें

कमलेश्वर, जितेन्द्र भाटिया, निरुपमा सेवती, मृदुला गर्ग, श्रवण कुमार, सतीश जमाली, सनत कुमार और से. रा यात्री के नाम उल्लेखनीय है।

समांतर कहानी दृष्टि की प्रतिबद्धता से मुक्त होकर जनता के बीच जाने का आग्रह प्रकट करती है। "....यह समांतर पीढ़ियों और समांतर सोच की कहानी थी जिसमें लेखकों की उम्र और विचारधारा की कोई बंदिश नहीं थी। यह पीढीमुक्त लेखन और बद्धमूल चिंतन पर पुनर्विचार के आग्रह से जन्मी कहानी थी।"[1] वस्तुतः इस कहानी का केन्द्रबिंदु सोद्देश्यता रही है। इस सोद्देश्यता के तहत रचनाकार अपनी संवेदनाओं को कथानक के स्तर पर उभारता है। समांतर कहानी युगीन यथार्थ को अभिव्यक्ति देती है। वह जीवन के सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक पहलुओं को प्रस्तुत करती है। "इस प्रकार स्थितियों की समग्रता से ऐतिहासिक जाँच की जाने के कारण इन कहानियों का अपना स्वतंत्र जीवन दर्शन विकसित हुआ। समाज में व्याप्त शोषण मुखी यथार्थ की सच्चाइयों को उनकी निर्ममता के साथ पकडने का प्रयास इन कहानियों में हुआ है।"[2] इस दर्शन का आधार आम जन है। इस आम जन की शोषित स्थिति को और इस शोषित स्थिति से उसके मुक्ति संघर्ष को समांतर कहानी में आवाज़ मिली है।

वास्तव में समांतर कहानी लेखकीय दायित्व से जुडी है और इसका अर्थ प्रतिबद्धता है और यह प्रतिबद्धता आम जन के प्रति है। प्रतिबद्धता के साथ

---

1. मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, पृ. 136
2. डॉ. साधना शाह, हिन्दी कहानी संरचना और संवेदना, पृ. 86

संबद्धता भी आवश्यक है क्योंकि बिना जीवन संलग्नता के यह संभव नहीं है। इसमें 'आम आदमी' शब्द का प्रयोग संभवतः 'सर्वहारा' शब्द के विरोध में हुआ। सर्वहारा एक खास सिद्धान्त से जुडा शब्द है जो भारत के आम आदमी की समग्रता के प्रति न्याय नहीं कर सकता। आम आदमी शब्द सर्वहारा की धारणा का विस्तार करता है। क्योंकि आम आदमी की ज़िंदगी गाँवों से लेकर बाज़ारों, कस्बों, नगरों और महानगरों तक फैली हुई है। आम आदमी में मज़दूर, निम्न मध्यवर्गीय किसान, खेतीहर मज़दूर, कम वेतन पानेवाला शिक्षक, किसानी चपरासी और अन्य शोषित पीडित लोगों का संसार शामिल है। समांतर कहानी का वामपंथी लेखन के साथ निकट संबन्ध है किंतु प्रगतिशीलता और मानवतावाद अत्यंत व्यापक शब्द है। समांतर कहानी सामयिक संबन्धों से जुडती है। समांतर दृष्टि लेखकीय चिंतन को युग के अनुरूप समकालीन स्थितियों से जोडती है।

समांतर कहानी लेखन के संदर्भ में कमलेश्वर के साथ मधुकर सिंह, सुधा अरोडा, मुद्रा राक्षस, अनीता औलक, सूर्यबाला, दीप्ति खंडेलवाल, हिमांशु जोशी, गंगाप्रसाद विमल राही मासूम रज़ा, मिथिलेश्वर, आशीष सिंहा आदि का नाम उल्लेखनीय है। समांतर कहानी की सबसे बडी विशेषता उसका यथार्थबोध है। मतलब जनसामान्य से उसका जुडाव है। कमलेश्वर की 'कस्बे का आदमी', 'गर्मियों के दिन', 'नीली झील' आदि कहानियाँ जनसामान्य की समस्याओं को उजागर करनेवाली है। 'अपने देश के लोग', 'लाश', 'रातें', 'ज़िंदा मुर्दे', 'धूल उड़ जाती है', आज़ादी के बाद के राजनीतिक यथार्थ का अंकन करती है। कमलेश्वर की समांतर कहानी समाज को केन्द्र में रखती है, इनमें 'राजा निरबंसिया', 'सींखचे',

'जो लिखा नहीं जाता', 'मांस का दरिया', 'दूसरी सुबह', 'पश्चिम से निकला था' आदि कहानियाँ प्रमुख हैं।

"जीवन के यथार्थ को सहजता के साथ प्रस्तुत करने का काम समांतर के नए कहानीकारों ने किया। उन्होंने अपने आपको आम आदमी से जोडकर ही इस आन्दोलन का शुभारंभ किया।"[1] सारांशतः समांतर कहानी आम आदमी के सुख-दुःख की कहानी है। जिंदगी का स्वरूप आज विघटनकारी मूल्यों के कारण सामाजिक, धार्मिक राजनीतिक सभी क्षेत्रों में ऐसा विकृत हो गया है कि आदमी पग-पग पर अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करता दिखाई देता है। समांतर कहानीकारों ने अपने लेखन में आम आदमी की ज़िंदगी का कोना-कोना छान मारा है। वर्तमान जीवन के जो-जो कटु पहलू दिखाई दिए उन सभी को इन्होंने चित्रित किया है।

1.3.2.5 सक्रिय कहानी

समांतर कहानी आंदोलन के बाद आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में 'सक्रिय कहानी' नामक आंदोलन का सूत्रपात हुआ। इस आंदोलन के प्रणेता राकेश वत्स है। इसकी शुरुआत सन् 1975 से माना जाता है। राकेश वत्स के अनुसार "सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है आदमी की चेतनात्मक ऊर्जा और जीवंतता की कहानी। उस समय और अहसास की कहानी जो आदमी को बेबसी, वैचारिक निहत्थेपन और नपुंसकता से निजात दिलाकर पहले स्वयं अपने अंदर की

---

1. रेखा वसंत पाटील, समांतर कहानी में यथार्थ बोध, पृ. 197

कमज़ोरियों के खिलाफ खडा होने के लिए तैयार करने की जिम्मेदारी अपने सिर पर लेती है। जो साहित्य की इस सार्थकता के प्रति समर्पित है कि साहित्य संकल्प और प्रयत्न के बीच की दरार को पाटने का एक ज़रिया है।"[1] वास्तव में सक्रिय कहानी आम आदमी को अपने अधिकार के लिए मानसिक और व्यावहारिक स्तरों पर सक्रिय करने का काम करती है।

सक्रिय कहानी किसी लेखक से यह अपेक्षा नहीं रखती कि वह किसी राजनीतिक पार्टी का कार्ड होल्डर मेम्बर हो। सक्रिय कहानी साहित्य को जनता से जोडना चाहती है, जन नेताओं या किसी पार्टी के कार्ड होल्डर मेम्बरों से नहीं। सक्रिय कहानीकारों के अनुसार समान्तर कहानी में आम आदमी को दयनीय दब्बू, पस्त, विचार शून्य और निहत्था दिखलाकर उसके प्रति दया, करुणा, ममता जगाने की आवश्यक कोशिश की गई है। इससे आम आदमी की मानसिकता और भी पस्त हो गई। इसी एक बिंदु पर सक्रिय कहानी सामंतर कहानी का विरोध करती है। सक्रिय कहानी व्यक्तिवादी दानवी प्रवृत्तियों का विरोध करती है। शोषण के खिलाफ लडती है और आम आदमी के हित के लिए सचेष्ट रहती है।

राकेश वत्स के शब्दों में "सक्रिय कहानी एक तरफ पुराने मूल्यों का सफाया कर रही है तो दूसरी तरफ जेनुइन मूल्यों की स्थापना के लिए संघर्षरत भी है। नैतिकता के सभी प्रतिमानों को ध्वस्त करने में सक्रिय कहानीकारों की

---

1. राकेश वत्स, सक्रिय कहानी की भूमिका से

दिलचस्पी नहीं है। मुख्यतः सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विसंगतियों को ध्वस्त करने के इरादे से लिखी गई ये कहानियाँ मले ही एक मैनरिज़्म का शिकार दिखाई देती है, फिर भी आम आदमी के जीवन में सुगबुगाती विद्रोही चेतना को उभारने में इनकी भूमिका नगण्य नहीं है।"[1] मतलब आदमी को शोषण से मुक्ति दिलाने का जो संघर्ष सक्रिय कहानी में है, वह नगण्य नहीं है।

साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय कहानी ने अपनी अवधारणा को पुष्ट किया है। राकेश वत्स, सुरेन्द्र सुकुमार, रमेश बतरा, सच्चिदानंद धूमकेतु, नवेन्दु, चित्रा मुद्गल, धीरेन्द्र अस्थाना, विकेश निझावन, सुरेन्द्र मनन, वेरेन्द्र मेहदीरत्ता, श्रवण कुमार, अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुमार संभव श्रीकांत, राजेश कुमार, सिरिल मैथ्यु आदि कहानीकार सक्रिय कहानी आंदोलन में सक्रिय थे।

1.3.2.6 समकालीन कहानी

साठोत्तरी कहानी में समकालीन कहानी की चर्चा गंगाप्रसाद विमल ने की है। समान जीवन दृष्टि रखनेवाले व्यक्ति जो समान स्तर पर जीवन की विसंगतियों, विकृतियों और संत्रास को झेल रहे हैं, समकालीन कहानीकार कहलाये। "समकालीन लेखक की दृष्टि केवल यथार्थ की स्थितियों के चरित्र तक ही सीमित नहीं है, अपितु वह उन कारणों की तह में जाता है जो वर्तमान स्थितियों के लिए ज़िम्मेदार है।"[2] समकालीन कहानीकारों ने अपना दावा इस बात के लिए पेश किया कि वह

---

1. राकेश वत्स, सक्रिय कहानी की भूमिका से
2. पुष्पपाल सिंह, समकालीन कहानी, युगबोध का संदर्भ, पृ. 63

अपनी भोगी हुई ज़िंदगी को सही मायने में संपूर्णता से जानता है और उसका प्रामाणिक यथार्थ है, जिसका संप्रेषण वह अपनी कहानियों में ईमान्दारी से करता है। कहानियों की ज़िंदगी असली ज़िंदगी से इतनी समरूप पहले कभी नहीं रही थी। वह उन कारणों को भी ढूँढती है जो आगे आनेवाले कल के लिए ज़िम्मेदार है।

समकालीन कहानी में जीवन सापेक्ष्य समस्याओं, आदर्शों की निरुद्देश्यता, मूल्यहीनता और प्रदर्शनहीन स्वभाव और क्रियाहीन स्वभाववाले मनुष्य का चित्रण है। गंगा प्रसाद विमल के अनुसार निर्मलवर्मा, प्रबोध कुमार, दूधनाथ सिंह, रामनारायण शुक्ल, श्रीकांत वर्मा, राजकमल चौधरी, प्रयाग शुक्ल, रवीन्द्र कालिया, सुरेन्द्र वर्मा, मधुकर सिंह, ज्ञानरंजन, इसराइल, नीलकान्त तथा हरिवंश कश्यप इस धारा में आनेवाले कहानीकार है।

1.3.2.7 जनवादी कहानी

आठवें दशक में हिन्दी साहित्य में जितने भी आंदोलन चला गए, उन सबमें मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग की ज़िंदगी का रूपायन ही होता रहा। नई कहानी, सचेतन कहानी और अकहानी जैसे आंदोलनों में आम आदमी या सर्वहारा वर्ग की पीडाओं और यातनाओं को बहुत ही कम मात्रा में ही अभिव्यक्ति मिली। समांतर कहानी तक आते ही उसमें आम आदमी की उपस्थिति तो है लेकिन सत्य, न्याय, ईमान्दारी के लिए लडते रहनेवाले लोगों का प्रतिपक्ष बहुत साफ नहीं है। अपराधी के नकाब उतारने में समांतर कहानी भी उतना सफल नहीं हुई। इस कमी को पूरा करने के उद्देश्य से जनवादी कहानी का सूत्रपात हुआ। जनवादी कहानी ने

वर्ग संघर्ष की चेतना को साफ रूपायित किया। थके हारे, टूटे पात्रों के स्थान पर जनवादी कहानी में संघर्षशील, जीवंत और जुझारू पात्रों का सृजन होने लगा और वर्ग संघर्ष पर ज़ोर दिया गया। मधुरेश के शब्दों में "कहानी के संदर्भ में जनवादी कहानी वस्तुतः प्रगतिशील कहानी का ही विस्तार है।"[1] मतलब जनवादी कहानी का संबन्ध मार्क्सवाद से है।

सन् 1981 अक्तूबर में जनवादी लेखक संघ का प्रस्तावित घोषणा पत्र ज़ारी किया गया। इसमें पच्चास लेखकों की उपस्थिति थी। सन् 1982 फरवरी 13 को जनवादी लेखक संघ का स्थापना सम्मेलन दिल्ली में हुआ। जनवादी लेखक संघ ऐसे लेखकों का संगठन है जो जनता के हित में अपने हित ढूँढते हैं। जनवादी लेखकों के दायित्व की ओर इशारा करते हुए रमेश उपाध्याय बताते हैं "उनका कर्तव्य है कि वे हमारी जनता के जीवन, उसके स्वप्नों और संघर्षों को अपनी रचनाओं में बिंबित करें, उसकी जनवादी चेतना को पुष्ट और विकसित करें, उसके संघर्ष के मनोबल को दृढ़ करें।"[2] जनवादी लेखक संघ वास्तव में जनवाद के विस्तार के लिए संघर्ष करता है, जिससे हमारी जनता अपनी ज़िंदगी को शोषण मुक्त कर उसे बेहतर बना सके और अपनी रचनात्मक शक्ति का विकास कर सकें। "जनवादी कहानीकार अपने बाह्य परिवेश तथा आभ्यंतर जगत् में संघर्ष और आत्म संघर्ष करता हुआ उन सब चीज़ों को अपना नैतिक समर्थन तथा सौंदर्यात्मक अभिशंसा प्रदान करता है, जो तर्कसंगत, प्रासंगिक, तथा ऐतिहासिक दृष्टि से

---

1. मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, पृ. 151
2. रमेश उपाध्याय, जनवादी कहानी, पृष्ठभूमि से पुनर्विचार तक, पृ. 239

आवश्यक है। वर्णन या चित्रण वह दोनों प्रकार की चीज़ों का करता है, लेकिन ध्वंस और निर्माण की एक अनवरत प्रक्रिया से गुज़रता हुआ वह गलत चीज़ों के विरुद्ध संघर्ष करता हुआ सही चीज़ों को समाज में प्रतिष्ठित करता है।"[1] वास्तव में जनवादी कहानी आम आदमी को अपने अधिकार हासिल कराने के लिए लड रही है। न्याय, समानाधिकार, दया आदि के प्रति संघर्ष चेतना जागृत करती है। शोषण के विरुद्ध संघर्ष और लडाई जनवादी कहानी में देखी जा सकती है। जनवादी कहानीकार सामाजिक यथार्थ के चितेरे हैं। वे सामाजिक यथार्थ को देखते ही नहीं बल्कि उसका समाधान भी खोजते हैं। उदाहरण के लिए गरीबी एक सामाजिक यथार्थ है। लेकिन गरीबी का चित्रण मात्र करना जनवादी कहानीकार का लक्ष्य नहीं है। वे एक सामाजिक समस्या के रूप में गरीबी का चित्रण करते हैं और पीछे का कारण और उसका समाधान भी ढूँढते हैं। रमेश उपाध्याय कहते हैं - "यथार्थ चित्रण का अर्थ है सामाजिक यथार्थ में निहित अंतर्विरोधों को सही-सही समझना, उनसे उत्पन्न समस्याओं को वस्तुगत रूप में जानना, उनके बारे में अपनी राय कायम करना, उनके समाधान खोजना और तब अपनी समूची समझ, जानकारी, राय और सूझ के साथ संभावित या प्रस्तावित समाधान की ओर संकेत करते हुए एक संवेदनशील कलाकार की दृष्टि से उन्हें उनकी समग्रता में प्रस्तुत करना।"[2]

ज्ञानरंजन, सतीश जमाली, काशीनाथ सिंह, रमेश उपाध्याय, इसरायल, मधुकर सिंह, नीरज सिंह, उदय प्रकाश, संजीव, विजयकांत, मिथिलेश्वर, महेश्वर,

---

1. रमेश उपाध्याय, जनवादी कहानी, पृष्ठभूमि से पुनर्विचार तक, पृ. 165
2. वही, पृ. 166

असगर वजाहत, पंकज विष्ट, अनंत कुमार सिंह, सुरेश अनियाल, शशांक आदि लेखक हिन्दी के जनवादी कहानी लेखन के साथ जुडे हुए हैं। इन लेखकों के साथ कुछ वरिष्ठ लेखक भी जनवादी कहानी लेखन के साथ जुडे हुए हैं। इनमें भीष्म साहनी, अमरकांत, मार्कण्डेय, शेखर जोशी आदि का नाम उल्लेखनीय है। जनवादी कहानी लेखन के साथ कुछ महिला लेखक भी जुडी हुई हैं। इनमें नमिता सिंह, ममता कालिया, सूर्यबाला, चंद्रकांता, चित्रा मुद्गल, राजी सेठ, मैत्रेयी पुष्पा, दीप्ति खंडेलवाल, नासिरा शर्मा आदि का नाम उल्लेखनीय है।

भीष्म साहनी की 'पटरियाँ', 'सलमा आपा', जहूर बक्श, दहलीज, शेखर जोशी की 'हलवाहा', ज्ञानरंजन की 'संबन्ध', 'शेब होते हुए', काशीनाथ सिंह की 'आदमीनामा', इसरायल की 'रोजनामचा', असगर वजाहत की 'स्विमिंग पूल', स्वयंप्रकाश की 'आयेंगे अच्छे दिन', रमेश उपाध्याय की 'देवीसिंह कौन', 'पानी की लकीर', नमिता सिंह की 'समाधान' आदि जनवादी कहानी की कोटि में आती हैं। जनवादी कहानी में गाँव के माहौल का चित्रण हुआ है। गांवों में व्याप्त भुखमरी, गरीबी, बेकारी, राजनीतिक भ्रष्टाचार, जातिवादी संघर्ष आदि को भी उसमें अभिव्यक्ति मिली है। गांव में चलनेवाले वर्गसंघर्ष भी जनवादी कहानी का एक प्रमुख विषय रहा है। नीरज सिंह की 'करिश्मा', मधुकर सिंह की 'लहू पुकारे आदमी' आदि इसके लिए उदाहरण है।

"जनवादी कहानी को यह श्रेय प्राप्त है, उसने उपेक्षित, शोषित, पीडित, संघर्षरत 'आम आदमी' को अपनी कहानियों में प्रतिष्ठित किया और हिन्दी कहानी

को एक विशाल समुदाय से जोड दिया।"[1] वास्तव में जनवादी कहानी शोषित, पीडित, संघर्षरत, आम आदमी की कहानी है।

1.4 समकालीन कहानी

आधुनिक साहित्य की अगली कडी के रूप में समकालीन साहित्य का विकास हुआ। आधुनिक साहित्य मानव केन्द्रित था। उसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता और उसके अस्तित्व के लिए भटक विद्यमान थी। उसमें सत्ता, विचार आदि को प्रमुखता मिली और पिछडे वर्ग जैसे दलित, स्त्री, प्रकृति आदि कम महत्वपूर्ण रहे। समकालीन साहित्य इस केन्द्रीयता को तोडनेवाला साहित्य है। आधुनिकता ने जिन-जिन तत्वों को हाशिए पर खडा कर दिया था, वे सब समकालीन साहित्य के केन्द्र में आ गए। अतः समकालीन साहित्य हाशिएकृतों का साहित्य है। अल्पसंख्यक, पिछडे लोग, दलित, स्त्री, प्रकृति आदि सब इसमें समाहित हो जाते हैं। इसलिए कह सकते हैं कि समकालीन साहित्य की प्रमुख विशेषता उसकी बहुस्वरता है। "हिन्दी का समकालीन साहित्य अपने समय की समस्याओं और चुनौतियों के साथ संघर्ष करते हुए अपने सामाजिक सरोकार को प्रामाणित करनेवाला साहित्य है। यह साहित्य अपने समय के यथार्थ का अनावरण करता है साथ ही उन मानव विरोधी यथार्थों के खिलाफ प्रतिरोध जाहिर करता है जो मनुष्य को मानवोचित जीवन जीने के अधिकार से वंचित रखता है।"[2] अर्थात् समकालीन साहित्य इन हाशिएकृतों के संघर्ष और प्रतिरोध का साहित्य है।

---

1. आंबेकर बाबूराव, असगर वजाहत की कहानियों में व्यवस्थाविरोधी स्वर, पृ. 39
2. डॉ. एन. मोहनन, समकालीन हिन्दी उपन्यास, पृ. 22

समकालीन कहानी समय के यथार्थ को दर्शाती है। आज दुनिया नवउपनिवेशवाद, भूमंडलीकरण व बाज़ारीकरण, सांप्रदायिकता, भ्रष्ट राजनीति, शोषण और सांस्कृतिक विघटन जैसी समस्याओं से गुज़र रही है। समकालीन कहानीकार इन समस्याओं और विसंगतियों के प्रति अपना प्रतिरोध कहानियों के माध्यम से जाहिर कर रहे हैं।

1.4.1 समकालीन कहानी : प्रमुख प्रवृत्तियाँ

1.4.1.1 उपनिवेशवाद का विरोध

"औपनिवेशिक ज्ञान का सिलसिला नया नहीं है। इसकी मुख्य प्रवृत्ति है ऊपर सार्वभौमता और नीचे भेदभाव का प्रचार। यह आधुनिकता ही नहीं, बुद्धिवाद और राष्ट्रीयता को भी विकृत करने का मामला है।"[1] आज समाज में मनुष्य की स्थिति इतनी गिर गई है कि वह वस्तु में तब्दील हो रही है। उसकी ज़िंदगी में मूल्यों के लिए कोई स्थान ही नहीं है। मूल्यों का विघटन होने के साथ साथ साम्राज्यत्व शक्तियाँ व्यापार के माध्यम से अपनी सीमा का विस्तार करती रहती हैं। समकालीन कहानियों में इस यथार्थ का चित्रण हुआ है और इसके प्रति विरोध भी जाहिर किया गया है। उदय प्रकाश की 'वारन हेसिटंस का सांड', स्वयंप्रकाश की 'ट्रैफिक', जयनंदन की 'विश्व बाज़ार का ऊंट' आदि कहानियाँ भूमंडलीकरण की विभीषिका को दर्शाती है। उदयप्रकाश की 'पॉल गोमरा का स्कूटर', 'संजीव की ब्लैक होल',

---

1. शंभूनाथ, उपनिवेशवाद स्मृति से वर्तमान, वर्तमान साहित्य दिसंबर 2012

पंकज विष्ट की 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते', मृदुला गर्ग की 'कलि में सत' आदि नव उपनिवेशवादी माहौल को दर्शानेवाली कहानियाँ हैं।

1.4.1.2 सांप्रदायिकता

आज सांप्रदायिकता भारत की गंभीर समस्याओं में एक है। सांप्रदायिकता को आर्थिक एवं राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति का अमानवीय हथियार मान सकते हैं। वीरेन्द्र मोहन कहते हैं - "सांप्रदायिकता की समस्या ने एक नस्लवाद पैदा किया है और इस सांप्रदायिकता ने धर्म के कर्मकांडी रूप को जनता के लिए अफीम की तरह उपयोग किया है। धार्मिक उन्माद और सांप्रदायिक अहं जिस तरह से बढ़ा है, वह वर्तमान समाज के अंतर्विरोधों का परिणाम है। इनको रोकने के लिए जिस तरह की संकल्प शक्ति और क्रियाशक्ति की आवश्यकता थी, उसे उत्पन्न नहीं किया गया। राजनीति और पूँजी के खेल ने इसको पनपने और विकसित होने का अवसर दिया। आज भारतीय समाज जिस मुहाने पर खडा है, वह खतरनाक स्थिति में है।"[1] यह समकालीन जीवन का यथार्थ है। समकालीन कहानीकार इससे वाकिफ है और सांप्रदायिकता की भीषणता और विकराल स्थिति का चित्रण करते हुए समाज को सजग बनाने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। सांप्रदायिकता की समस्याओं के प्रत्यक्ष उत्तरदायी हमारे राजनीतिक एवं धार्मिक नेताओं की स्वार्थता है। सांप्रदायिकता की इस अमानवीयता के प्रति विरोध जाहिर करनेवाली अनेक कहानियों का सृजन

---

1. वीरेन्द्र मोहन, इतिहास और संस्कृति, पृ. 25

हुआ है। स्वयंप्रकाश की 'क्या तुमने कोई सरदार भिखारी को देखा है', 'पार्टीशन', पंकज विष्ट की 'जडायू', मुद्राराक्षस की 'जले मकान की कैदी', अमरकांत की 'मौत का नगर', असगर वजाहत की 'मुक्ति', 'पहचान', 'मुर्दाबाद' आदि कहानियाँ इन समस्याओं को उजागर करती हैं।

1.4.1.3 स्त्री विमर्श

स्त्री सदियों से शोषण की शिकार है। युग-युगों से पुरुषमेधा समाज में स्त्री अपने अधिकारों से वंचित रही। पुरष की आज्ञा का पालन करते हुए चुपचाप घर संभालनेवाली नारी को आदर्श नारीकी संज्ञा प्राप्त हुई। नारी मन की आशा-आकांक्षाएँ दबी पडी थीं। अपने मन की इच्छाओं को प्रकट करने में नारी असमर्थ थी। जो अपनी इच्छानुसार जीने का आग्रह प्रकट करती थी उसे कुलटा की संज्ञा से अभिहित किया गया। रमणिका गुप्ता के शब्दों में "जहाँ स्त्रियों ने डोर या लगाम अपने हाथ में थामी या थामने की कोशिश की, वहीं उनका विरोध शुरू हो जाता है। उनके खिलाफ सामाजिक शोषण, भयादोहन, चरित्र-हनन यहाँ तक कि हिंसक हथकंडे भी अपनाए जाने लगते हैं।"[1] सदियों से स्त्री का शोषण होता रहता है लेकिन आज फर्क सिर्फ इतना है कि शोषण का तरीका बदल गया है। आज विज्ञापनों के ज़रिए स्त्री उपभोक्तावादी समाज और उसकी संस्कृति का हिस्सा बन गई। उस विशिष्ट सामाजिक वर्ग के लिए वह एक 'वस्तु' मात्र बन गई और उनका उपयोग करना उस वर्ग के लिए हर्ष की बात बन गई।

---

1. रमणिका गुप्ता, स्त्री विमर्श, पृ. 30

समकालीन कहानीकारों ने स्त्री जीवन के यथार्थ को सूक्ष्मता के साथ व्यंजित किया है। स्त्री जीवन की यंत्रणाएँ, पुरुष की एकाधिकारी मानसिकता, विविध क्षेत्रों पर स्त्री का शोषण आदि को कहानियों के ज़रिए दर्ज करते हुए समकालीन कहानीकार अपना प्रतिरोध भी व्यक्त करते हैं। मृदुला गर्ग की 'हरि-बिन्दी', रवीन्द्र ठाकुर की 'स्त्री रेर पत्र', 'औरतें' आदि इस प्रकार की कहानियाँ है। चित्रा मुद्गल, कृष्णा सोबती, मैत्रेयी पुष्पा, गीतांजली श्री, नासिरा शर्मा, अलका सरावगी आदि ऐसी सशक्त लेखिकाएँ हैं जो स्त्री विमर्श की कहानियाँ लिखती आ रही है।

1.4.1.4 दलित विमर्श

दलित युग-युगों से उत्पीडित, उपेक्षित एवं शोषित वर्ग है। "....दलित उस वर्ग को सूचित करता है जिसे सामाजिक एवं ऐतिहासिक कारणों से अस्पृश्यता और शोषण की अमानवीय व्यथा झेलनी पडी है और अस्पृश्यता के नाम पर सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं से दूर रखा गया है।"[1] इस दमित पीडित वर्ग को समकालीन कहानी में आवाज़ मिली है। समकालीन दलित कहानी वास्तव में दलितों की आत्मपहचान की कहानी है। "दलित कहानी संघर्ष और मुक्ति की कहानी है। संघर्ष अपने अतीत और वर्तमान है और मुक्ति भी उसी इतिहास से है जिसने उसके जीवन को नरकीय बनाया है।"[2]

---

1. डॉ. एन. मोहनन, समकालीन हिन्दी उपन्यास, पृ. 144
2. कमल किशोर गोयनका, दलित कहानी का शास्त्र, नई धारा, अक्तूबर-नवंबर 2011

दलित साहित्य समाज में बदलाव का आह्वान करता है। इसमें आक्रोश के साथ-साथ संवेदना विद्यमान है। न्याय की उत्कट लालसा के साथ समानता की तीव्र ललक इसमें है। रचनाकार अपनी रचनाओं के माध्यम से दलितों के साथ की गई साजिश से लडने का आह्वान देते हैं। कुसुम मेघवाल की 'आतंक', कुसुम वियोगी की 'अंतिम बयान', सुशीला टाकभौरे की 'सिलिया', ओमप्रकाश वात्मीकी की 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ', जयप्रकाश कर्दम की 'नो बार', सत्यप्रकाश की 'दलित ब्राह्मण' आदि कहानियाँ दलित शोषण के मूल कारणों की पडताल करते हुए शोषण के खिलाफ प्रतिरोध जाहिर करती है।

1.4.2 अन्य प्रवृत्तियाँ

स्त्री विमर्श, दलित विमर्श आदि के अलावा समकालीन कहानी में अनेक प्रवृत्तियाँ विद्यमान है। इसमें पारिस्थिति विमर्श वृद्ध विमर्श, आदिवासी विमर्श, विस्थापन का यथार्थ, समलैंगिकता, वेश्या समस्या आदि जुड जाते हैं। अमरकांत की कहानियों में जितने पहलू आ जाते हैं उसका ही यहाँ विस्तार से विश्लेषण किया गया है।

1.5 प्रमुख स्वातंत्र्योत्तर कहानीकार

1.5.1 भीष्म साहनी

भीष्म साहनी का प्रथम कहानी संग्रह 'भाग्य रेखा' सन् 1953 में प्रकाशित हुआ। तब से वे साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय थे। 'पहला पाठ', 'भटकती राख', 'पटरिया', 'वाड्चू', 'शोभायात्रा', 'निशाचार', 'पाली' आदि उनके प्रकाशित कहानी

संग्रह है। भीष्म साहनी की कहानियों में वर्ग-वैषम्य के साथ-साथ विपन्नता और उससे उत्पन्न चारित्रिक अंतर्विरोध दिखाई देता है। स्वातंत्र्योत्तर परिवेश में बनते-बिखरते जीवन मूल्यों और संबन्धों की वास्तविकता को 'चीफ की दावत', 'पटरियां', 'अमृतसर आ गया है', 'मालिक का बन्दा', 'ढोलक', 'ओ हरामज़ादे' आदि कहानियों में अभिव्यक्ति मिली है। 'वाङ्चू' में विस्थापित चीनी मानस की निरीहता का चित्रण है। 'पाली' और 'आवाज़े' में विभाजन की त्रासदी एवं सांप्रदायिक दंगों की मानसिकता का अंकन हुआ है। उनकी कहानियों में युगबोध की दृष्टि से 1984 तक की भारतीय राजनीतिक घटनाओं को आवाज़ मिली है।

1.5.2 गिरिराज किशोर

'पेपर वेट', 'चार मोती वे आब', 'नीम केपूल', 'रिश्ता और कहानियाँ', 'बल्द रोज़ी', 'हम प्यार कर ले', 'गाना बडे गुलाम अली खां का' आदि गिरिराज किशोर के प्रमुख कहानी संकलन है। पुरातनता एवं आधुनिकता का संघर्ष उनकी कहानियों की विशेषता है। महानगरों, दफ्तरों, भीड भरी सडकों, होटलों, नौकरी पेशा परिवारों तथा मज़दूरों की गन्दी बस्तियों का यथार्थ रूप उनकी कहानियों में देखने को मिलता है। उनकी कहानियों में मुख्यतः स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक, राजनीतिक, स्थितियों में बदलते मानवीय मूल्यों का सशक्त चित्रण है।

1.5.3 फणीश्वरनाथ रेणु

स्वतंत्र भारत में आधुनिकता एवं परंपरा का तीव्र संघर्ष ग्रामीण लोगों ने सबसे अधिक उठाया है। रेणु में ग्रामीण जीवन के प्रति आत्मीयता का भाव है और

भोक्ता के रूप में उन्होंने ग्रामीण परिवेश के परिवर्तनों को जिया है। नगर संस्कृति तथा लोकसंस्कृति दोनों का स्वरूप रेणु की कहानियों का मूल स्वर है। 'ठुमरी', 'आदिम रात्रि की महक', 'अजिनखोर', 'मेरी प्रिय कहानियाँ', 'एक श्रावणी दोहरी की धूप', 'अच्छे आदमी' आदि कहानी संग्रहों में ग्रामीण परिवेश को विस्तार से चित्रित किया गया है। 'न मिटनेवाली भूख', 'उच्चाटन', 'विघटन के क्षण' आदि सामाजिक बोध को उजागर करनेवाली कहानियाँ हैं। 'जलवा', 'आत्मसाक्षी', 'पिरकापरस्ती', 'पुरानी हिन्दी : नया पाठ' आदि कहानियाँ राजनीतिक बोध को उजागर करती है। 'तीसरी कसम', 'भित्ति चित्र की मयूरी', 'रसप्रिया', 'ठुमरी', 'ठेस' आदि कहानियों में ग्रामीण एवं नगरी संस्कृति के बहुआयामी चित्र है। व्यक्तिवादी जीवन मूल्यों पर समष्टिवादी मूल्यों की प्रतिष्ठा उनकी कहानियों की पहचान है।

1.5.4 मोहन राकेश

नई कहानी के प्रवक्ता मोहन राकेश ने कहानी लेखन का आरंभ सन् 1941 में ही कर लिया था। उनकी कहानियों का पहला संग्रह 'इंसान के खंडहर' सन् 1950 में प्रकाशित हुआ। लेकिन सन् 1957 में प्रकाशित 'नये बादल' को मोहन राकेश अपना प्रथम संकलन मानते हैं। सन् 1958 में उनका दूसरा संग्रह 'जानवर और जानवर' और सन् 1961 में 'एक और ज़िंदगी' का प्रकाशन हुआ। उनकी कहानियों में 'क्लेम', 'मलबे का मालिक' आदि देश-विभाजन की त्रासदी पर आधारित कहानियाँ है। 'परमात्मा का कुत्ता', 'शरणार्थी समस्या' को उजागर

करती है। 'जानवर और जानवर' गिरिजाघरों और उसके परिसरों में व्याप्त धार्मिक पाखंड, भ्रष्टाचार, आतंक और मुख्य पातरियों के अपने कर्मचारियों के प्रति अमानवीय व्यवहार, यौन उत्पीडन आदि का अंकन करनेवाली कहानी है। मोहन राकेश की कहानियों में स्त्री-पुरुष संबन्धों को उजागर करनेवाली कहानियों की सूची काफी लंबी है। 'खाली', 'क्वार्टर', 'एक और ज़िंदगी', 'फौलाद का आकाश' आदि कहानियाँ इसके लिए उदाहरण हैं।

1.5.5 निर्मल वर्मा

निर्मल वर्मा की कहानियों में कुंठा, घुटन, उदासी, करुणा, अनास्था, व्यर्थता, निष्क्रियता, एकाकीपन एवं अजनबीपन विस्तार से अभिव्यक्त है। अस्तित्ववादी दर्शन एवं फ्रायडवादी दर्शन उनकी कहानियों का आधार है। 'परिन्दे', 'बीच बहस में', 'जलती झाडी', 'पिछली गर्मियों में' आदि उनके प्रमुख कहानी संकलन है।

1.5.6 रजेन्द्र यादव

राजेन्द्र यादव मध्यवर्गीय जीवन के लेखक है। नगेन्द्र के अनुसार "राजेन्द्र यादव की कहानियों में आधुनिक भावबोध को व्यापक सामाजिकता से संदर्भित करने की कोशिश मिलती है। उन्होंने निर्वैयक्तिकता पर विशेष बल दिया है और एक समान्तर दुनिया बनाने की चेष्टा की है, किंतु इस समांतरता ने कहानियों को व्यक्तित्व भले ही दिया है, पर इसी के कारण वे असंप्रेषित रह गयी है।"[1] 'जहाँ

---

1. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 689

लक्षी कैद है', अभिमन्यु की आत्महत्या, 'छोटे-छोटे ताजमहल', 'किनारे से किनारे तक', 'प्रतीक्षा', 'टूटना और अन्य कहानियाँ', 'अपने पर' आदि उनके प्रमुख कहानी संकलन हैं। अपने समकालीन कहानीकारों के समान राजेन्द्र यादव ने भी स्त्री-पुरुष संबन्ध की कहानियाँ लिखी है। स्त्री पुरुष संबन्धों की कहानियों के साथ-साथ भारतीय समाज में स्त्री के बहुविध उत्पीडन के प्रति भी वे पर्याप्त सजग और संवेदनशील लगते हैं। 'खेल-खिलौने', 'साइकिल', 'कुतिया', 'नास्तिक', 'तीन पत्र और अलपीन', 'लकडहारा' और 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' आदि कहानियाँ इसके लिए उदाहरण है।

1.5.7 महीप सिंह

'सुबह के फूल', 'उजाले के उल्लू', 'घिराव', 'कुछ और कितना', 'मेरी प्रिय कहानियाँ', 'भीड से घिरे चेहरे', 'कितने संबन्ध', 'इक्यावन कहानियाँ', 'धूप की उंगलियों के निशान', 'सहमे हुए', 'दिल्ली कहाँ है ऐसा ही है' आदि महीपसिंह के प्रमुख कहानी संकलन हैं। वर्तमान जीवन की विषमताओं, विकृतियों विडम्बनाओं के बीच सहजता एवं सक्रियता का बोध इनकी कहानियों की विशेषता है। व्यक्ति-व्यक्ति तथा व्यक्ति-समाज के बीच आये तनावों को ये कहानियाँ जीवन्तता से प्रस्तुत करती हैं।

1.5.8 उषा प्रियंवदा

उषा प्रियंवदा ने अपने कहानी लेखन का आरंभ 'आश्रिता' नामक कहानी से किया था जिसका प्रकाशन सन् 1952 में 'सरिता' में हुआ था। सन् 1952 और

सन् 1959 की अवधी में उनकी बारह कहानियाँ सरिता में ही प्रकाशित हुईं। सन् 1961 में उनका पहला कहानी संग्रह 'फिर वसंत आया' प्रकाशित हुआ। दूसरा कहानी संग्रह 'ज़िंदगी और गुलाब के फूल' सन् 1961 में ही प्रकाशित हुआ। उनकी कहानियाँ मुख्यतः स्त्री समस्याओं को लेकर लिखी गयी हैं। प्रारंभिक कहानियों में भारतीय समाज में क्रूरताओं और अवहेलनाओं की शिकार होती और उसको सहती स्त्री का चित्रण हुआ है तो बाद की कहानियों में स्त्री प्रतिरोध भी दर्ज हुआ है। शिक्षित बेरोज़गार युवकों की मानसिक तनाव, कुंठा आदि को भी उनकी कहानियों में आवाज मिली है। 'ज़िंदगी और गुलाब के फूल', 'मुक्ता और राशी', 'दो अंधेरे', 'जाले', 'नयी कोंपल', 'पैरेम्बुलेटर' आदि कहानियों में ये विशेषताएँ दृष्टव्य हैं। नई कहानी के क्षेत्र में 'वापसी' कहानी से उषा प्रियंवदा ने अपना स्थान जमा लिया था। गोपालराय का कथन है - "'नयी कहानियाँ' में अगस्त, 1961 में प्रकाशित 'वापसी' उषा प्रियंवदा की पहली कहानी थी जिसने उन्हें 'नयी कहानी' परिवार में बकायदा जगह का हकदार बना दिया था।"[1]

1.5.9 मार्कण्डेय

'हंसा जाई अकेला', 'माही', 'पानफूल', 'महुए का पेड', 'भूदान', 'सहज और शुभ' आदि मार्कण्डेय की प्रमुख कहानी संकलन है। उनकी कहानियों में मजदूर 'भिखमंगे', 'बच्चे', 'अनाथ स्त्रियाँ', निराश्रित बूढ़े और बेरोज़गार युवकों की समस्याएँ यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत की गई है। मार्कण्डेय प्रगतिशील दृष्टि

---

1. गोपालराय, हिन्दी कहानी का इतिहास भाग 2, पृ. 114

रखनेवाले लेखक हैं इसलिए उनकी कहानियों में वर्ग-वैषम्य, शोषण और असमानता के प्रति गहरा आक्रोश विद्यमान है। 'कल्यान-मन', 'दोने की पत्तियाँ', 'हंसा जाई अकेला', 'माही', 'सूर्या', 'मंगरा', 'भूदान', 'मधुपुर के सिवान का एक कोना', 'महुए का पेड' आदि कहानियाँ मेहनतकश किसान की ज़िंदगी को उकेरती हैं। उनकी कहानियों में प्रतिकूलताओं से लगातार लडते रहने का सचेतना और साहस हमेशा विद्यमान है।

1.5.10 मन्नू भंडारी

मन्नू भंडारी की कहानियों के केन्द्र में नगर का परिवेश, नगर की ज़िंदगी, विशेषकर स्त्री जीवन है। उनका पहला कहानी संग्रह 'मैं हार गयी' सन् 1957 में प्रकाशित हुआ। 'तीन निगाहों की एक तस्वीर' उनका दूसरा कहानी-संकलन है। इसका प्रकाशन सन् 1958 में हुआ था। मधुरेश के शब्दों में "अपने समय-संदर्भों के प्रति यह खुली दृष्टि मन्नू भंडारी को अपने दौर की कथा लेखिकाओं से तो अलग करती है, अनेक कथाकारों से भी अलग करती है। पूँजीवादी समाज में तेज़ी से उभरते नवधनाढ्य वर्ग की मूल्य मूढ़ता के संकेत उनकी अनेक कहानियों में उपलब्ध है।"[1] 'उनकी मैं हार गई', 'सज़ा', 'नकली हीरे', 'तीसरा हिस्सा' आदि कहानियाँ वर्तमान व्यवस्था के अंतर्विरोधों को व्यक्त करनेवाली है। 'अनथाही गहराइयाँ', 'खोटे सिक्के', 'हार', 'मजबूरी' आदि उनकी श्रेष्ठ कहानियाँ हैं।

---

1. मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, पृ. 109

1.5.11 कमलेश्वर

कमलेश्वर छठे दशक के कहानीकारों में कनिष्ठ थे। उनकी कहानियों में युगीन संक्रमण का मूल्यान्वेषी स्वर विद्यमान है। उनका पहला कहानी संग्रह 'राजा निरबंसिया' सन् 1957 में प्रकाशित हुआ था। दूसरा कहानी संग्रह 'कस्बे का आदमी' भी इसी वर्ष प्रकाशित हुआ जिनमें उनकी सोलह कहानियाँ संकलित हैं। उनकी कहानियों में स्त्री के प्रति पुरुष समाज के सडे गले विरोधाभासों और आज़ादी के बाद भारतीय समाज में नारी की स्थिति तथा शिक्षित मध्यवर्ग के युवकों की उपेक्षाओं और तकलीफों को आवाज़ मिली है। आधुनिक महानगरीय जीवन और उसकी संवेदनहीनता को भी उन्होंने कहानी का विषय बनाया है। धर्मनिरपेक्ष मानवीय संवेदना को संप्रेषित करनेवाली कहानियों का सृजन भी उन्होंने किया है। विभाजन की विभीषिकाओं का भी अंकन उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से किया है।

1.5.12 दूधनाथ सिंह

सन् 1960 के आसपास से दूधनाथ सिंह साहित्यिक क्षेत्र में सक्रिय थे। 'सपाट चेहरेवाला आदमी', 'दुखान्त', 'प्रेमकथा का अंत न कोई', 'माई का शोकगीत', 'धर्म क्षेत्रे गुरु क्षेत्रे' आदि उनके प्रमुख कहानी संकलन हैं।

1.5.13 मृदुला गर्ग

'कितनी कैदें', 'डैफोडिल जल रहे हैं', 'ग्लेशियर से', 'टुकडा-टुकडा आदमी' आदि मृदुला गर्ग के प्रमुख कहानी संकलन हैं। उनकी कहानियों में पति-

पत्नी के बीच पसरे हुए दाम्पत्य के जलते-धुआँते, बनते-बिगडते आपसी रिश्ते बेलाग और बेलौस तरीके से व्यक्त हुए हैं। सुमन राजे के शब्दों में "अपना परिवेश, अपनी मिट्टी, अपनी दिनचर्या, अपनी पहचान, अपना तर्क, अपनी स्वायत्तता, औरत के शब्दकोश से जुडे ऐसे नये शब्द हैं, जो मृदुला गर्ग की केन्द्रीय सत्ता है।"[1]

1.5.14 ममता कालिया

ममता कालिया सन् 1970 से साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय थी। उपभोग संस्कृति की आड़ में अंधाधुंध दौड लगानेवाली युवा पीढ़ी की मानसिकता को उन्होंने बखूबी अपनी रचनाओं में उकेरा है। 'छुटकारा', 'सीट नंबर छह', 'एक अदद औरत', 'प्रतिदिन', 'उसका यौवन', 'जाँच अभी जारी है', 'चर्चित कहानियाँ', 'बोलनेवाली औरत' आदि उनके प्रमुख कहानी संकलन हैं।

1.5.15 नासिरा शर्मा

नासिरा शर्मा समकालीन समय की एक महत्वपूर्ण वैचारिक व्यक्तित्व रखनेवाली ऐसी रचनाकार है, जो सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक मुद्दों को लेकर न केवल मुखर है बल्कि उन अहम सवालों को अपने लेखन में लाकर पाठकों को जगाती है। 'शामी कागज़', 'पत्थर गली', 'इब्ने मरियम', 'संगसार', 'सबीना के चालीस चोर', 'इन्सानी नस्ल', 'दूसरा ताजमहल', 'खुदा की वापसी', 'बुतखाना' आदि उनके प्रमुख कहानी संग्रह है।

---

1. सुमन राजे, हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, पृ. 291

इन कहानीकारों के अलावा और अनेक शख्सियत ऐसे हैं, जिन्होंने हिन्दी कहानी साहित्य को अपनी तूलिका से विकास की ओर अग्रसर किया है। जितेन्द्र भाटिया, हिमांशु जोशी, रमेश उपाध्याय, शिवप्रसाद सिंह, राही मासूम रज़ा, से.रा.यात्री चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, अनामिका, नमिता सिंह, उदय प्रकाश, स्वयंप्रकाश, काशीनाथ सिंह आदि अनेक लेखक इसमें शामिल है।

1.6 अमरकांत

1.6.1 व्यक्तित्व

अमरकांत का जन्म उत्तर प्रदेश की पूर्वी सीमा पर स्थित बलिया जनपद के भगमलपुर गांव में 1 जुलाई 1925 को हुआ था। बचपन में उनका नाम श्रीराम शर्मा था। बि.ए. तक उनकी पढ़ाई हुई। बि.ए. के बाद वे पत्रकारिता के क्षेत्र में आ गए। उनके अनुसार "बि.ए. पास करते ही मैं ने कोई सरकारी नौकरी न करके पत्रकार बनने का निश्चय कर लिया। ....मेरे चाचाजी आगरा में रहने लगे थे और उन्हीं के प्रयास में दैनिक 'सैनिक' में नौकरी लग गई मेरी।"[1] अर्थात् आगरा से उनका पत्रकार व साहित्यकार जीवन की शुरुआत हुई। 'सैनिक' के बाद वे क्रमशः 'अमृत पत्रिका', 'दैनिक भारत', मासिक पत्रिका 'कहानी' तथा अंत में 'मनोरमा' पत्रिका के संपादकीय विभाग में कार्य करने लगे। सन् 1946 में उनकी शादी गिरिजा देवी से हुई। उनके तीन बच्चे हैं। बडा बेटा अरुणवर्द्धन 'नवभारत टाईम्स' में संवाददाता है। बेटी का नाम संध्यासिंह है। तीसरा बेटा अरविंद अमरकृतित्व का प्रकाशन कार्य करते हैं।

---

1. अमरकांत, कुछ यादें कुछ बातें, पृ. 14

अमरकांत साहित्य जगत से प्रेमचंद और यशपाल के अलावा स्वाधीनता आंदोलन के जिन व्यक्तियों से विशेष प्रभावित थे उनमें गाँधीजी, पंडित नेहरु, आचार्य नरेन्द्र देव और जयप्रकाश नारायण अग्रगण्य थे। विदेसी कथाकारों में गोर्की, दायस्तावस्की, मोयांसा, रोम्या रोला, टालस्टाय, चेखब की प्रखरता के वे कायल थे। उनके कथा साहित्य की प्रेरणा और प्रभाव का सबसे सशक्त स्रोत हिन्दी कथा साहित्य की वह प्रगतिशील दृष्टि सम्पन्न, जनपक्षधर, यथार्थवादी परंपरा है जो प्रेमचंद की परवर्ती कहानियों और उपन्यासों से शुरू होती है। अमरकांत को प्रेमचंद परंपरा के रचनाकार सिद्ध करते हुए शिवकुमार मिश्र जी कहते हैं - "अमरकांत में कहीं किसी स्तर पर बनावट नहीं है, फिर भी अपनी सादगी में उनकी रचना लगभग वैसे ही हमारी चेतना पर दस्तक देती है जैसी प्रेमचंद की रचनाएँ। दैनंदिन जीवन के यथार्थ से अमरकांत अपनी रचनाओं के लिए सामग्री पाते हैं और अपने अनुभवों से उसे संयोजित कर रचना में प्रस्तुत करते हैं।"[1] प्रेमचंद अपनी रचनाओं के द्वारा तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन की आशा रखते थे। ठीक उसी प्रकार अमरकांत भी अपनी कहानियों के माध्यम से यह संदेश देते हैं कि मौजूदा सामाजिक व्यवस्था में बुनियादी बदलाव के बिना उस नरक से छुटकारा नहीं मिल सकता जो कि आज मनुष्य अपनी नियति के रूप में भोग रहा है। शिवकुमार मिश्र और राजेन्द्र यादव जैसे आलोचक इसलिए उन्हें प्रेमचंद परंपरा के लेखक मानते हैं। वास्तव में अमरकांत सामाजिक संचेतना के सजग रचनाकार है। स्वयंप्रकाश मिश्र के शब्दों में "अमरकांत चयनधर्मी रचनाकार है और हर रचनाकार होता भी है परंतु अमरकांत की चयनधर्मिता की दाद देनी

---

1. शिवकुमार मिश्र, प्रेमचंद विरासत का सवाल, पृ. 148

पडती हैं, विशेषकर उन प्रसंगों और संकेतों के लिए जो सामाजिक स्थिति को उजागर भी करते हैं।"[1] वे ऐसे सृजनधर्मी कथाकार है जिन्हें हिन्दी कथा साहित्य का 'एटोन चेखव' की उपाधि प्राप्त है। इस प्रकार के महान हस्ती का निधन 16 फरवरी 2014 को इलाहाबाद के अपने मकान में हुआ।

1.6.2 रचना संसार

अमरकांत ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत कहानी लेखन से की थी। कहानी के साथ-साथ उपन्यास एवं संस्मरण के क्षेत्र में भी उन्होंने अपनी तूलिका चलाई है।

1.6.2.1 संस्मरण

- कुछ यादें कुछ बातें
- दोस्ती

1.6.2.2 उपन्यास साहित्य

- सूखा पत्ता (1959)
- सुखजीवी (1960) बाद में 'पराई डाल का पंछी' नाम से प्रकाशित
- ग्रामसेविका (1962)
- कंटीली राह के फूल (1963)
- आकाशपक्षी (1965)

---

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी, समकालीन रचना और आलोचना, पृ. 142

- काले उजले दिन (1966)
- बीच की दीवार (1969)
- सुन्नर पंडे की पतोह (1993)
- इन्हीं हथियारों से (2002)
- लहरें (2005)
- खबर का सूरज आकाश में (अपूर्ण)

1.6.2.3 बाल साहित्य

- नेऊर भाई
- वानरसेना
- खूँटा में दाल है
- दो हिम्मती बच्चे

1.6.2.4 प्रौढ़ साहित्य

- सुग्गी चाची का गाँव
- झगरू लाल का फैसला
- एक स्त्री का सफर
- मंगरी
- बाबू का फैसला

1.6.2.5 कहानी साहित्य

अमरकांत की पहली कहानी 'बाबू' का प्रकाशन सन् 1949 में सैनिक पत्र के एक विशेषांक में हुआ था। प्रस्तुत कहानी में व्यंग्य का पुट सघन था और यह

कहानी मध्यवर्ग के बाबुओं के चरित्र को खोलती है। लेकिन अमरकांत स्वयं सन् 1950 में प्रकाशित 'इंटरव्यू' को अपनी पहली कहानी मानते हैं। इसके बाद वे लगातार लिखते रहे और उनके कई कहानी संकलन प्रकाशित हुए।

उनके प्रमुख कहानी संकलन है-

- ज़िंदगी और जोंक (1958)
- देश के लोग (1964)
- मौत का नगर (1971)
- मित्र मिलन तथा अन्य कहानियाँ (1979)
- कुहासा (1983)
- तूफान (1991)
- कलाप्रेमी (1991)
- एक धनी व्यक्ति का बयान (1997)
- सुख और दुःख का साथ (2002)
- जाँच और बच्चे (2004)

अमरकांत अपनी रचनाओं में औसत आदमी का जीवंत संसार उसकी खूबियों-खामियों के साथ प्रस्तुत करते हैं। नामवर सिंह के शब्दों में "अमरकांत की कहानियों का कथ्य पूरी ताकत के साथ मन पर सीधा असर डालता है। क्या नये कहानीकार भाषा को ऐसी शक्ति प्रदान करने के लिए प्रयत्नशील है? प्रसन्नता की बात है कि अमरकांत ने इस दिशा में एक आदर्श प्रस्तुत किया है। अमरकांत की भाषा प्रेमचंद की परंपरा पर अद्यतन विकास है - वही सादगी और वही सच्चाई है।

पढ़ने पर गद्य की शक्ति पर विश्वास जमता है।"[1] अमरकांत का कहानी-संसार मुख्यतः मध्यवर्ग और निम्नवर्ग के पात्रों, उनकी जीवन-दशाओं और संवेदनाओं पर आधारित है। उनकी कहानियों में मध्यवर्ग अपनी समस्त अभावजन्य पीड़ा, वैचारिक अंतर्विरोध चारित्रिक विसंगति और नैतिक बोध की असंगतियों के साथ विद्यमान है। आज़ादी के बाद भारतीय राजनीति पर हावी वर्गों के चरित्र की पोल खोलना, उनकी आलोचना करना और उन पर व्यंग्य करना भी अमरकांत की कहानियों के कथ्य में शामिल है। मानवीय मूल्यों की हत्या करनेवाले और धर्म के नाम पर समाज को बाँटने वाली शक्तियों पर भी अमरकांत ने अपनी कहानियों में गहरी संवेदना और व्यंग्य धर्मिता के साथ आक्रमण किया है। नई कहानी से समकालीन कहानी तक उनकी यात्रा में समाज के यथार्थ को उन्होंने देखा है, भोगा है और उसकी अभिव्यक्ति की है।

1.6.2.6 पुरस्कार

अमरकांत जी का उपन्यास 'इन्हीं हथियारों से' के लिए सन् 2007 का साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। सन् 2009 में प्रस्तुत उपन्यास के लिए व्यास सम्मान भी उन्हें मिला। इसी वर्ष ज्ञानपीठ पुरस्कार से भी उन्हें सम्मानित किया गया। इनके अलावा वे सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार, यशपाल पुरस्कार, जन-संस्कृति सम्मान, मध्यप्रदेश का अमरकान्त कीर्ति सम्मान आदि से भी अलंकृत हो चुके हैं।

---

1. डॉ. नामवर सिंह, कहानी नई कहानी, पृ. 37

1.7 निष्कर्ष

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी कहानी अनेक मंजिलों को पार करते हुए समकालीन समय तक पहुँच गई है और आज भी सक्रिय रूप से अपना सफर जारी रखी है। स्वतंत्रता के बाद अनेक कहानी आंदोलनों के ज़रिए हिन्दी कहानी का विकास हुआ। नई कहानी से लेकर समकालीन कहानी तक की विकास यात्रा में अनेक कृती व्यक्तित्वों ने सक्रिय रूप से अपनी भागीदारी दी है। उनमें अमरकांत अग्रणी है। नई कहानी के दौर से समकालीन कहानी तक उनका साहित्यिक जीवन ज़ारी रहा। सन् 1950 से लेकर सन् 2014 में उनकी मृत्यु के समय तक वे साहित्यिक क्षेत्र में सक्रिय थे। स्वतंत्रता के बाद की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों को जीवंतता के साथ अपनी कहानियों में उन्होंने उकेरा है। वे नई कहानी से लेकर समकालीन दौर तक के जीवन यथार्थ के चितेरे हैं। इस दृष्टि से उनकी कहानियों की प्रासंगिकता असंदिग्ध है।